वैद्य भैरव दत्त आसोपा

आसोपा वृद्धावस्था मे

विषय सूची

ब्रह्मज्ञान दर्पण

अब ब्रह्मज्ञान के लिये वैराग्य की आवश्यकता है। वैराग्य हुए बिना विषय वासना से मन नहीं हटता और मन विषयो मे लगा रहने से ब्रह्म मे तदाकार वृति नहीं हो सकती इसलिए आत्मज्ञान के लिए मुमुक्षुओ को वैराग्य होने वाले वचनो का उल्लेख होना परम आवश्यक है। अत उन्हीं वचनो का सूक्ष्म लेख लिखा जा रहा है जो कि मुमुक्षु के ध्यान देने योग है। उन लेखो को लिखना शुरू करने से पहले पहल लेखक अपने आपको वैराग्य विषय सूचक लेखो द्वारा चेतावनी दे रहा है।

वैराग्य विषय

कुटम्ब मोह की फासी जब्बर, बाजी कठिन करारी।
काम, क्रोध सिंघ ज्यूं गाजे, ममता नाचे न्यारी॥
कु मती दूती बड़ी अनीती, लार पडी यह थारी।
आशा तृष्णा सता रही तुमको, दे दे के पुचकारी॥
धन धन करते सब दिन बीते, मिटी न तृष्णा थारी।
हाथ पसार चला जब आगे, तब कहा माया धारी॥
न सग आये न सग जासी, धन दौलत सुत नारी।
पहले थे पीछे रह जासी, न कोई साथ तुम्हारी॥
झूठी काया झूठी माया, झूठी मोहब्बत थारी।
झूठा लेना झूठा देना, झूठी पू जी सारी॥
काया माया थिर नहि रहती, जाणें दुनिया सारी।
दो दिन की यह चटक चादनी, आखिर रात अंधारी॥
कौन किसी के मात पिता हैं, कौन पति कुण नारी।
कौन किसी के सगा सबधी, किसकी नातेदारी।
भाई भेलपो मित्र जनो की, करनी न्यारी न्यारी।
अपना अपना रहना लेंगे, दो दिन की यह यारी।
चले गये तेरे सग के साथी, जा रहि दुनिया सारी।
इस रस्ते को भाड़ साफ कर, तेरी भी अब त्यारी।

इस रस्ते पर ममता भाडी, जिसका डर तुझे भारी ।
उसको जडा मूल से काटे, तो तेरी बलिहारी ॥
इस रस्ते तुझे जाना होगा, पहिले करलै त्यारी ।
पीछे वाही पूना लागे, कह रहि दुनिया सारी ॥
सूते सूते ऊमर बीती, अब तो चेत अनाडी ।
गाफिल सोते जिनकी भैसें, पाडा जण जण हारी ॥
जो कुछ सोचा करले भैरू, कल पर तू मत डारी ।
कल की बात काल के बस मे, चलै न युक्ति थारी ॥

सुन्दर पाई देह, लगा चित्त राम मे ।
क्या फूला बेकाम, धरा धन धाम मे ॥
अन्त धरा धन धाम, काम नहि आवसी ।
साहिब के दरबार, मार बहु खावसी ॥
गाफिल मूढ गवार, अचैतन चेत रे ।
सबही सत सुजान, सीख तुझे देत रे ॥
विषयो मे बेहाल, लगा दिन रैन रे ।
सिर बैरी यमराज, न सूझे रैन रे ॥
दिल के अन्दर देख, कि तेरा कौन है ।
चलै न कोई साथ, अकेला गौन है ॥

देख धरा धन धाम, इन्हीं मे चित्त दिया।
किया न सुखरत काम, काम तें क्या किया॥
नहीं है तेरा कोय, नहीं तू कोय का।
मतलबिया ससार, बना दिन दोय का॥
मेरा मेरा मान, फिरे अभिमान मे।
बन्यो रहे दिन रात, इसी अध ज्ञान में॥
रहा न अमर कोय, रक अरु रावरे।
करले सुखरत काम, हाथ है दावरे॥
झूठा जग ससार, कितायक जीवना।
जैसे सपने माहि, तृषा जल पीवना॥
ऐसे सुख की आस, करे क्यो चाहना।
बार बार यमराज, मार क्यों खावना॥
झूठा सब जजाल, पडा तू फन्द में।
छूटन की नहीं करत, फिरत आनन्द मे।
भूल्यो क्यों भटकाय, जगत के जाल में।
बस रह्यो चारो यास, काल के गाल में।
करसै क्रोड उपाय, मोत नहीं छूटणी।
कर कर पर उपकार, कि लाभा लूटणी।

तू समझे मन माय, मरू नहि मारियां।
बडे बडे चल बसे, तू क्या तरवारिया॥
जाते हैं जो लोग, जो अपने माहिले।
आवत बारी तुरन्त, तुझे ले जायले॥
आये हैं दिन दोय, सभी यहां पाहुँना।
कई खो के कई लेके, सबको जांवना॥
तीखी करते तरक, गरक मद पान मे।
गये पलक मे ढलक, तडफ मैदान में॥
केते अर्जुन भीम, बली हनुमंत से।
केते गये असख्य, गुणी धनवत से॥
उनकी सुन सुन धाक, गिरी सब फाटते।
जिनको खाये काल, इन्द्र को डाटते॥
सोवे कहा निचत, परो पर पीड रे।
चलै आज या काल्ह, बटाऊ जीवरे॥
घडी घडी घडियाल, पुकारे तोयरे।
बहुत गई है बीत, अल्प रही जोयरे॥

जब तक सुखी शरीर है करतब को मत भूल।
जो कुछ सोचा कर चलो अत धूल की धूल॥

अवश्य एक दिन जायगे, जैसे सब जग जाय।
ऐसी करनी कर चलो, जग मे यश रह जाय॥
जैसा है दिन आज का, वैसा नहीं है काल।
करना है सो कर चलो, शिर पर घूमें काल॥
कच्ची शीशी कांच की, जैसी नर की देह।
जतन करता जायसी, हरि भज लाहवा लेह॥
पानी केरा बुद बुदा, ज्यू मनुष्य की देह।
ठरका लागत टूटसी, दीनो को कुछ देह॥
कब तक यह रहसी खडा, काया कच्चा कोट।
टूट जाय यह पलक मे, ना कुछ इसके ओट॥
चेत सके तो चेत जा, क्या सोवे सुख चैन।
श्वास नगारा कूचका, बाजत है दिन रैन॥
नदी किनारे रूखडो, जब तब होय विनाश।
बान काल के गाल मे, जीवण की क्या आश।
पाव पलक की खबर नहीं, करे काल की बात।
काल अचानक मारसी, ज्यू तीतर को बाज।
बाप गए दादा गए, समाचार भी नाय।
ना जाणूं कुण बैठसी, इसी भवन के माय।

चौबीस हजार पांच सो, दम आवत दिन रात।
यह टोटो इस देह मे, काहे को कुशलात ॥
घणी गई थोडी रही, अब तो भैरव चेत।
काल चिडैया चुग रही, निस दिन आयू खेत ॥
भैरव इस ससार मे, सदा रहा नहि कोय।
जैसो वास सराय को, तैसो ही जग जोय ॥
आख खोल कर देखले, सब जा रहे ससार।
कई आज गये कई काल गये, कई बुगचा बाध तैयार ॥
भैरव वह दिन निकट है, जगल होगा वास।
ऊपर ऊपर हरा फिरे, ढोर चरेंगे घास ॥
जैसे पानी हौज का, देखत गया बिलाय।
जिवडा ऐसे जायगा, भैरव नहीं उपाय ॥
भैरव अवसर जात है, आलस निद्रा खोय।
पथ कठिन है दूर का, सग न साथी कोय ॥
बडो पेट है काल को, सबको निगले जाय।
राजा रानी छत्रपति, कोई को छोडे नाय ॥
मोत किसी विध ना टलै, यत्न करो कोई लाख।
दिना बोयका राज है, अत राग की राख ॥

काल खाय सब जगत को, रहना किस विध होय।
देखो सारे जगत में, तोबा तोबा होय॥

जगत है रैन का सुपना।
किसी का कोई नहीं अपना॥
तिरे कोई विरला निर्लोभी।
डूबे सब भोग के भोगी॥
फूल मत देख तन गोरा।
जगत में जीवना थोड़ा॥
घड़ा ज्यूं नीर का फूटा।
पत्ता, ज्यूं डाल का टूटा॥
ऐसी है जान जिन्दगानी।
अबें तू चेत अभिमानी॥
निकस जब प्राण जावेगा।
नहीं कोई काम आवेगा॥
मित्र परिवार सुत दारा।
उसी दिन होयगा न्यारा॥
अमर नहीं रहन की काया।
सभी को काल ने खाया॥

अबं तूं चेतकर भैरूं ।
कालका बाज रहा डैरू ॥

जिन्हो घर घूमते हाथी, हजारो लाख थे साथी ।
उन्हो की होगई माटी, तू सुख भर नीद क्यो सोया ॥
जिन्हो घर लाल औ हीरा, सदा मुख पान का बीडा ।
उन्हो को खा गये कीडा, तू सुख भर नीद क्यो सोया ॥
जिन्हो घर पालकी घोडा, जडाऊ जहाज का जोडा ।
वही सब काल ने तोडा, तू सुख भर नीद क्यो सोया ॥

डोढया नौबत बाजती महल छतीसो राग ।
वह घर अब खाली पडा बैठण लागा काग ॥
आस पास जोधा खडा हाथ लिये तलवार ।
सब ही सब के देखते काल लेगयो मार ॥
दुनिया का यह हाल समझले मनवा मेरा ।
धरे हि रहे धनमाल होय जगल मे डेरा ॥
गई जवानी आयो बुढापो जीवन के दिन चार ।
जब तक श्वासा है देह मे आत्मज्ञान विचार ।

बुढापो वर्णन

बुढापो खोटो दुनिया में दोरो है श्रो भोगणो ॥ टेर ॥

डगमग-डगमग मस्तक डोले देही थर थर धूजे ।
उठणे को कुछ हिमत करे पण खाट पडन की सूझे ॥

काना सुणे न, सूझे थोडो, लकडी सारहे चाले ।
बाहिर भीतर जाय सके, जब लकडी दूजो झाले, रे ॥

रात्यू रणके नींद न आवे पडा पडा घबरावे ।
घडीक तडके आख लगे तो खोटा सुपना आवे रे ॥

होते भोर दस्त की हाजित दूर चला नहि जावे ।
पास खाट के निमटण बैठे दिन भर बदबु आवे, रे ॥

बुढापे में सरदी गरमी सब ही बहुत सतावे ।
नहाणा धोणा दूर रहा पण उठणे भी नहीं पावे, रे,
बुढापो ॥

रोटो बाटी और चपटी दात बिना कया खावे ।
त्यारी भोजन खाय सके नहीं नर्म खीचडी चावे रे,
बुढापो ॥

पुत्र वधु अरु बेटा पोता निरला हुकम उठावे ।
मन माफिक वे न चाले तो मन ही मन दुख
पावे रे, बुढापो ॥

निज सुत नारी बोले खारी अपना रोब जमावे।
सेवा बदले ताना दे दे उल्टा जीव जलावे, रे
बुढापो खोटो ॥

घरवाला जब नेक हुवे तो निश्चय फर्ज बजावे।
कइयक नीच घराने वाला नेडा भी नही आवे, रे
बुढापो खोटो ॥

जिसके घर मे पुत्रवधू जो सास ससुर को चावे।
उस सुगणी के तप से धन को कदे न टोटो आवे, रे
बुढापो खोटो

बुढापे मे सवही बातें पहली सी कहा पावे।
भरी जवानी याद कर कर मन ही मन पछता वे, रे
बुढापो ॥

जीता रहे तो यह बुढापा सब कोई को आवे।
मूर्ख को दिन वर्ष बराबर ज्ञानी सहज बितावे रे ॥
कइ एक लोभी जग मे आकर खाली हाथों जावे।
ज्ञानी ऊमर पाय धर्म की पोठ बाध ले जावे, रे
बुढापो।

बुढापे की यह, सव बातें देख देख कर लिन्ही।
देखी जैसी आसोपे ने ज्यू की त्यू कथ दीन्ही, रे
बुढापो ॥

बुढापो वर्णन

बुढापो खोटो दुनिया मे दोरो है ओ भोगणो ॥ टेर ॥
डगमग-डगमग मस्तक डोले देही थर थर घूजे।
उठणै की कुछ हिमत करे पण खाट पडन की सूझे ॥
काना सुणै न, सूझे थोडो, लकडो सारहे ्ाले।
बाहिर भीतर जाय सके, जब लकडी दूजो झाले, रे ॥
रात्यू रणके नींद न आवे पडा पडा घबरावे।
घडीक तडके आख लगे तो खोटा सुपना आवे रे ॥

होते भोर दस्त की हाजित दूर चला नहि जावे।
पास खाट के निमटण बैठे दिन भर बदबु आवे, रे ॥
बुढापै मे सरदी गरमी सब ही बहुत सतावे।
नहाणा धोणा दूर रहा पण उठणो भी नही पावे, रे,
बुढापो ॥

रोटी बाटी और चप'टी दात बिना क्या खावे।
त्यारी भोजन खाय सके नही नर्म खीचडी चावे रे,
बुढापो ॥

पुत्र वधु अरु बेटा पोता विरला हुकम उठावे।
मन माफिक वे न चाले तो मन ही मन दुख
पावे रे, बुढापो ॥

निज सुत नारी बोले खारी अपना रोब जमावे।
सेवा बदले ताना दे दे उल्टा जीव जलावे, रे
बुढापो खोटो ॥

घरवाला जब नेक हुवे तो निश्चय फर्ज वजावे।
कइयक नीच घराने वाला नेडा भी नही आवे, रे
बुढापो खोटो ॥

जिसके घर मे पुत्रवधू जो सास ससुर को चावे।
उस सुगणी के तप से धन को कदे न टोटो आवे, रे
बुढापो खोटो

बुढापे मे सवही बातें पहली सी कहा पावे।
भरी जवानी याद कर कर मन ही मन पछता वे, रे
बुढापो ॥

जीता रहे तो यह बुढापा सब कोई को आवे।
मूर्ख को दिन वर्ष बरावर ज्ञानी सहज वितावे रे ॥
कइ एक लोभी जग मे आकर खाली हाथो जावे।
ज्ञानी ऊमर पाय धर्म की पोठ बाध ले जावे, रे
बुढापो।

बुढापे की यह, सव बातें देख देख कर लिन्ही।
देखी जैसी आसोपै ने ज्यू की त्यू कथ दीन्ही, रे
बुढापो ॥

सोचत सोचत ही दिन बीते।
सोच करो मत बात गई को॥
बीत्योडी बात को सोच करो क्यो।
गई सो गई अब राख रही को॥
समय चूकि पुनि का पछितानी।
का वर्षा भइ कृषी सुखानी॥

समय खाली एक मिनट मत खोयरे खलक बीच,
आलस्य और अहकार खोयलै तो खोयलै।
मनुष्य का जन्म यह वृथा नहीं चला जाय,
ज्ञान की चिराकी, चित्त जोयलै तो जोयलै।
तन, मन, धन से, दीनो की सेवा कर,
इस, सच्चे धर्म का, बीज बोयलै तो बोयले।
चलते पोणी ज्य माया भी थिर नहीं,
बहती नदी में हाथ धोय ले तो धोयलै।
जो कुछ अपनी श्रद्धा के माफिक
दान कर दानी पण होयलै तो होयलै।
वडे बडे धनवान, धन छोड चल बसे,
ऐसी कंजूसी को खोयलै तो खोयलै।

दीन और दुखियो की, सेवा करे जा,
प्रेम से सभी का प्यारा होयलै तो होयलै ।
आत्मा के चिंतन में, मन को लगा कर,
नीर ज्यूँ निर्मल, होयलै तो होयलै ।
जहा तक जिन्दगी, सुकृत करेजा,
अपना, कर्त्तव्य जोयलै तो जोयलै ।
छिन्न भगुर, देह मे, नित रहनो बनेगो नहीं ।
बीज के, झुमकै मोती पोयलै तो पोयलै ।
अध विश्वास को, दूर कर भैरव
निज के स्वरूप को, जोयलै तो जोयलै ।
मरने पर मुक्ति की आशा छोड कर
जीवत ही मुक्त पए होयले तो होयले ।

मुक्ति का साधन आत्मज्ञान है यह मनुष्य को ससाररूपी समुद्र मे से पार करने के लिये नौका-रूप है। आत्म ज्ञान के लिये सत्सग और सत् शास्त्र का पठन पाठन, श्रवण मनन निदिध्यासन आदि है महात्माओ का

आवश्यकता है। बिना सुणे समझे किसी को भी ज्ञा
प्राप्त नहीं हो सकता है। श्रवण से चित्त की शुद्धि होत
है और बुद्धि दृढ होती है। श्रवण से भक्ति मिलती
और विषयो की आसक्ति टूटती है श्रवण से विवेक आत
हैं अन्त करण शुद्धहोता है श्रवण से बोध बढता है औ
सशय टूटता है श्रवण से मैं पन दूर होता है और ज्ञा
प्रबल होता है अतएव इसके बराबर दूसरा कोई साध
नहीं है। सदा नियम से शास्त्र की बातें सुनने उनक
मनन करने तथा उसमे ध्यानावस्थित रहने से पूर्ण ज्ञान
बन सकता है इस श्रवण के प्रभाव से ही अध्यात्म ज्ञा
प्राप्त होता है। यों तो साधारण प्राणी मात्र को ही
बहुत से पशु पक्षी कीडे मकोडे आदि ऐसी सुन्दर रचन
करते हैं जिसको देखकर बडे बडे वैज्ञानिक तग रह जा
हैं परन्तु वह ज्ञान ही यथेष्ट नहीं है वरन जिस ज्ञान
विषय में भगवती श्रुति कहती है "ऋते ज्ञाना
मुक्ति" अर्थात् सत्यज्ञान के बिना अन्य किसी भ
प्रकार से मुक्ति नहीं हो सकती।

इस उपयुक्त ज्ञान से ही मानव का मानव जीवन
सार्थक होता है। जैसे भोजन बनाने के लिये अन्न

जल, पात्र, चूल्हा आदि सब सामान तैयार है परन्तु अग्नि न हो तो सब सामान वृथा हो जाते हैं क्योंकि पाक का साधन तो अग्नि ही है। इसी प्रकार अन्य कर्म उपासना आदि मुक्ति के गौण साधन हैं साक्षात् नहीं। वास्तव मे तो मोक्ष का साक्षात् साधन तो आत्म ज्ञान ही है।

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवता.
आत्मैक्य बोधेन विनावि मुक्ति
र्नसिध्यति जनम शतात रेऽपि ।।
(विवेक चूडामणि श ६)

भले ही कोई शास्त्रो की व्याख्या करे, देवताओ का यजन करे, नाना शुभ कर्म करे, अथवा देवताओ को भजे, परन्तु ब्रह्म ज्ञान के बिना सौ जन्म बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं हो सकती है। मुक्ति का साधन तो आत्म ज्ञान ही है।

नोत्पद्यते विना ज्ञान विचारेणान्य साधन ।
यथा पदार्थ भान हि प्रक शेन विना क्वचित ।।

'जिस प्रकार प्रकाश के बिना पदार्थों की प्रतीति नहीं हो सकती, उसी प्रकार विचार के बिना अन्य साधनों से ज्ञान नहीं होता है। अर्थात् विचार करने से ही ज्ञान होता है अत मुमुक्षु के लिये विचार करना परम आवश्यक है। अपरोक्षानुभूति श्लोक ११

अर्थस्य निश्चयोदृष्टो विचारेण हितोक्तित
न स्नानेन न दानेन प्राणायाम शतेन वा ॥

(विवेक चू डामणि श्लोक १३)

कल्याणप्रद उक्तियों द्वारा विचार करने से ही आत्मा का ज्ञान होता है। स्नान दान तथा सैकडं प्राणायाम से आत्म ज्ञान नहीं हो सकना, उपर्युक्त प्रामणिक आचार्यों की उक्तियों से यह भली भांति प्रगट होगया कि बिना आत्म ज्ञान मुक्ति नहीं हो सकती इस पर मुमुक्षु का विचार

कोऽहं कथमिदं जात को वा कर्त्तास्य विधते
उपादान किमस्तीह विचार सोऽयमीदृश

(अपराक्षानुभूति श० १२)

मैं कौन हूँ, यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ, इसका

रचयिता कौन है, और कौन उपादान कारण है, यह सब मुमुक्षु को विचार करना चाहिये, इस विषय मे दो दल हैं एक तो वह है कि जिसका खाने पीने और खुश रहने के सिवाय दूसरी बात सोचने की फुरसत ही नहीं रहती। उन्हे न तो मैं को जानने की आवश्यकता है और न किसी धर्म शास्त्र को विचारने की आवश्यकता है वे आनन्दी जीव हैं। सुबह होकर साम होती है और साम होकर सोते सोते ही भोर हो जाता है उमर ऐसे ही खतम हो जाती है। ऐसे मनुष्य मे और पशुओ मे कोई भेद नहीं है, परन्तु एक दल और है उस दल के लोग विचारशील और उद्यमशील हैं और रात दिन इसी विचार में लगे रहते हैं कि हम क्या हैं अगर किसी मनुष्य में यह ज्ञान न हो कि मैं क्या हू तो दिवाल पर लिखे हुए चित्र में और उसे में अन्तर ही क्या रहा।

इत को नवस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति
दुर्लभ मानुष देह प्राप्य तत्रपि पौरुषम् ॥५॥

विवेक चूडामणि

प्राणी को दुर्लभ मनुष्य देह पाकर एवं सब तरह

का साधन मिल जाने पर भी अगर अपनी आत्मा का सुधार नहीं करते उससे अधिक मूढ और कौन होगा।

उध्धरेदात्मनामान नात्मानमवसादयेत्।
अत्मैव ह्यात्मनोबन्धुरात्मैरिपुरात्मन ॥
"गीता अ ६-५"

इसलिये मनुष्य को चाहिये कि अपने द्वारा आपका ससार समुद्र से उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे। क्योंकि यह जीवात्मा आपही तो अपना मित्र है और आपही अपना शत्रु है अर्थात् दूसरा कोई शत्रु मित्र नहीं है, जो ज्ञानी है वह मित्र है और जो आत्म ज्ञान के लिये प्रयत्न नहीं करते वे शत्रु है।

ऋणमोचनकतार पितु सन्ति सुतादय।
बन्धमोचन कर्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चन॥
(विवेक चूडामणि)

पिता के ऋण को चुकाने वाले तो पुत्रादि भी होते हैं, परन्तु भव बन्धन से छुडाने वाला अपनेसे भिन्न दूसरा कोई भी नही मिलेगा यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

फिर मुमुक्षो को वेदान्त श्रवण से लगा कर समाधि (लय) पर्यन्त अभ्यास करके ईश्वर प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये। क्योंकि आत्म ज्ञान के बिना अनेक विद्याओ मे प्रवीण होते हुए भी जो मनुष्य अज्ञानी ही समझा जाता है और जो आत्म ज्ञानी है वह अन्य विद्याओ से अनभिज्ञ होते हुए भी पडित है। अत मनुष्य आत्म ज्ञान से जो लाभ और आनन्द उठा सकता है वह किसी दूसरे ज्ञान से नहीं उठा सकता। मनुष्य के लिये सबसे बडा कार्य और पुरुषार्थ अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना है। जो मनुष्य बहुत से सूत्रो और अनेक शास्त्रो को पढकर भी अपनी आत्मा को नही पहचानता वह उस कुडछे के समान है, जो सब पकवानो मे फिरता है परन्तु मिठाई के स्वाद को नहीं जानता अर्थात् मनुष्य के लिये जितनी विद्यायें है उन सबमे अध्यात्म विद्या ही प्रधान है। इसके जाने बिना किसी भी मनुष्य के जीवन की सफलता नही हो सकती तथा भविष्य मे भी जीवन के लिये आत्मा के ज्ञान की बडी भारी आवश्यकता है परन्तु वेदान्त

के अभ्यास बिना अ त्मा का ज्ञान नहीं हो सकता जहां सपूर्ण ज्ञान का अन्त हो जाय इस प्रकार के ज्ञान को वेदान्त कहते हैं ।

जैसे भडार घर तो सामान से भरा हुआ मौजूद है, परन्तु ताला बन्द है और जब तक हाथ मे कु जी नहीं आती तब तक कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। इस पर श्रोता, वक्ता से पूछता है कि "तो फिर वह कु जी कौन सी है, मुझे बताइये न !"

तब वक्ता कहता है कि—सद्गुरु की कृपा ही कुंजी है। उससे बुद्धि प्रकाशित होती है और द्वैतके कपाट एक दम खुल जाते है।

तब शिष्यगुरु के पास जाता है और शिष्य सद्गुरु से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! मैं इस ससार समुद्र से कैसे पार होऊ गा मेरी क्या गति होगी उसका उपाय क्या है मैं नहीं जानता कृपया मेरी रक्षा कीजिये मैं इसीलिये आपकी शरण मे आया हू और यह मैं जानता हूं कि जगत में जब्बर रस्से को काटने के लिये अच्छे छुरे की जरूरत रहती है बिना किसी खरे छुरे के रस्सा

नह कट सकता। इसी प्रकार कौन से साधन द्वारा ससार बन्धन को काटकर परम पद को प्राप्त होजाऊं, क्योंकि इस ससार में अनेक योनियो में भ्रमण करता हुआ कष्ट पर कष्ट भोगता रहा हूँ इस पर आपकी शरण में आये हुए की रक्षा कीजिये।

गुरु— हे शिष्य ! तेरे पूछे हुए प्रश्नो का उत्तर दिया जायगा। प्रथम तुझे चारो वेदो से प्रत्येक वेद के मूल मत्र महावाक्य बताये जाते हैं जिससे चारो पुरुषार्थ आदि अनेक विषय समझने आजावेंगे।

महावाक्य विवरण

जिसमें पहिले ऋग्वेद का महावाक्य— "प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म" है और "अह ब्रह्मास्मि" यहयजुर्वेद का महावाक्य है और (तत्त्वमसि) सामवेद का और "अयमात्माब्रह्म' अथर्व वेदका है। अत इन महा वाक्यो द्वारा ब्रह्म का विचार करना चाहिये इनमे से पहिले ऋग्वेद के ब्रह्म और प्रज्ञान शब्द की व्याख्या की जाती है। "एक मेवा द्वितीय ब्रह्म" ब्रह्म एक और द्वितीय है यह सिद्धान्त है प्रज्ञान नाम स्वय चेतन का

है। जो अति उत्तम ज्ञान है उसी का नाम प्रज्ञान है और उसका वाचक प्रणव है अत ॐ कार का ध्यान करना चाहिये।

यजुर्वेद वाक्य

"अह ब्रह्मास्मि" अह शब्द के अर्थ का निरूपण- सृष्टि से पहिले केवल मैं ही था और सत् असत् कुछ भी नहीं था तथा सृष्टि के अन्त मे भी ब्रह्म (मैं) ही की सत्ताप्रति पादित रहती है। अतएव जैसे धागे में माला के मणिये पिरोये रहते है, उसी प्रकार यह समस्त तृजग मेरे में पोया हुवा है। "सर्व खल्विद ब्रह्म" जैसे वृक्ष की छाया में वृक्ष की सत्ता है उसी प्रकार ब्रह्म की सत्तामें जगत् की सत्यता है।

सामवेद का वाक्य

"तत्वमसि" इस सामवेद के महावाक्य मे ती पद हैं एक "तत्" दूसरा "त्वम्" और तीसरा "असि उसमें तत्पद से ईश्वर का ग्रहण, त्वम् पदसे जीवक और असि पद से ब्रह्म का वर्णन है। उसमे जीव औ ईश्वर उपाधि विशिष्ट हैं और ब्रह्म उपाधि रहित हैं

यदि ब्रह्म को भी उपाधि युक्त मानलें तो श्रुति से विरोध होता है।

"एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म"

"नेह नानास्तिकिनञ्चन"

श्रुति मे लिखा है कि "एकमेवा द्वितीय ब्रह्म" ब्रह्म एक और अद्वितीय है। "नेह नानास्ति किञ्चन" इस संसार मे ईश्वर के अतिरिक्त नाना कुछ भी नहीं है। सब वेदो मे सामवेद की विशेषता होने से तत्त्वमसि महावाक्य अन्य महावाक्यो से ऊँचा समझा जाता है और तत्त्वमसि आदि महा वाक्यो से उत्पन्न हुआ ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है। तत्त्वमसि समझाने का वाक्य है और अहं ब्रह्मास्मि समझे हुए का वाक्य है।

अथर्ववेद वाक्य

अब अथर्व वेद सबंधि वाक्य के अर्थ का निर्णय किया जाता है। "अयमात्मा ब्रह्मेति" यह श्रुति है। इस श्रुति में तीन शब्द हैं। अयम्, आत्मा और ब्रह्म अर्थात्

यह आत्मा ब्रह्म है आत्मा से 'आकाश उत्पन्न हुआ आकाश से पवन, पवन से अग्नि, अग्नि से जल, जलसे पृथिवी, पृथिवी से औषधि, औषधियो से अन्न और अन्न से जीव उत्पन्न हुए। अत आत्मा समस्त जगत का उत्पत्ति स्थान है। इसलिये आत्मा को अनन्त ब्रह्माड का बीजरूप और "ससार वृक्ष" का स्वरूप कहा है। अर्थात् इसी आत्मा से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि अनन्त पदार्थों की उत्पत्ति होती है। अत ये सब इस वृक्ष की शाखाएं हैं। यह वृक्ष तीनों गुणो (सत्व, रज, तम) से वृद्धि को प्राप्त होता रहता है और उसमें से विषय रूपी कोपलें निकलती रहती हैं। चारो वेद इसके पत्ते हैं, नवधा भक्ति रूपी इसके फूल लगते हैं और धर्म अर्थ काम और मोक्ष इसके चार फल हैं जो कि कर्म के अनुसार प्राप्त होते हैं। धर्म, अर्थ और काम तीनो का ही परिणाम दु ख होने के कारण ज्ञानी लोग इस वृक्ष को ज्ञान रूपी शस्त्र से काट डालते हैं। इसके कटजाने पर केवल मूलभूत आत्मा ही रह जाता है।

भगवान श्री शंकराचार्य ने अपने तत्व-बोध पुस्तक में चार साधन बताये हैं।

साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणां मोक्षसाधनभूतंतत्त्वविवेकप्रकारं वक्ष्यामः।

अर्थ— मोक्षपद को प्राप्ति के चार प्रकार के उपायो को साधने वाले अधिकारी जनो के लिये जो मोक्ष में साधन है उन तत्वो के विचार को कहता हूं। जगत् का उपादान-कारण सत्-चित्-आनन्द रूप परमेश्वर हैं। वही माया के आवेश से जीव अवस्था को प्राप्त होता है और पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश में अपना रूप देखता है। तत्त्व के बोध से वह पञ्चमहाभूत से अपने को अलग समझता है। इससे तत्त्वबोध का प्रकार कहना अति आवश्यक है।

समाधान, इन छओं साधनों का होना शम आदि साधन-सम्पत्ति कहाती है। शम--शान्ति, दम—इन्द्रियों का रोकना, उपरम – कर्तव्य का अनुष्ठान, तितिक्षा– शीतादि का सहना, श्रद्धा – गुरु आदि के वाक्य में विश्वास, समाधान — चित्त की एकाग्रता, ये ही छ साधन हैं।

शमः कः ?, मनोनिग्रहः। दमः कः ?, चक्षुरादि-बाह्येन्द्रियनिग्रहः। उपरमः कः ?, स्वधर्मानुष्ठानमेव। तितिक्षा का ?, शीतोष्णासुखदुःखादिसहिष्णुत्वम्। श्रद्धा कीदृशी ?, गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा। समाधानं किम् ?, चित्तैकाग्रता।

अर्थ— शम किसे कहते हैं ? मन रोकने को शम कहते हैं। दम का क्या अर्थ है ? नेत्र, कान,

जिह्वा, घ्राण और त्वचा आदि बाहरी इन्द्रियो के रोकने को दम कहते है। उपरम किसे कहते हैं? अपने निज धर्म का ही अनुष्ठान करना। अर्थात् शब्द आदि विषयो से इन्द्रियो को रोक कर और सब लौकिक विचारो से हटा कर केवल आत्मविचार में तत्पर रहना, इसे उपरम कहते हैं। तितिक्षा किसे कहते हैं? शीत, उष्ण, सुख, दु ख, मान, अपमान आदि को धैर्य से सह लेना इसे तितिक्षा कहते हैं। श्रद्धा कौन सी वस्तु का नाम है? गुरु के वाक्यो को और वेदान्त के वाक्यो को विश्वासपूर्वक यथार्थ समझना श्रद्धा कहाती है। समाधान का अर्थ है? चित्त की एकाग्रता को अर्थात् गुरु और अधिकारी को बताना समाधान कहाता है। इन्हे ही शम आदि छ साधन कहते हैं।

मुमुक्षुत्वं किम्?, मोक्षो मे भूयादितीच्छा।

अर्थ— मुमुक्षुत्व का क्या अर्थ है? मेरा मोक्ष होवे ऐसी इच्छा का होना। अर्थात् 'मुझे किसी प्रकार

समाधान, इन छओं साधनों का होना शम आदि साधन-सम्पत्ति कहाती है। शम--शान्ति, दम—इन्द्रियों का रोकना, उपरम – कर्तव्य का अनुष्ठान, तितिक्षा— शीतादि का सहना, श्रद्धा – गुरु आदि के वाक्य मे विश्वास, समाधान — चित्त की एकाग्रता, ये ही छ साधन हैं।

शमः कः ?, मनोनिग्रहः । दमः कः ?, चक्षुरादि-बाह्येन्द्रियनिग्रहः । उपरमः कः ?, स्वधर्मानुष्ठानमेव । तितिक्षा का ?, शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम् । श्रद्धा कीदृशी ?, गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा। समाधानं किम् ?, चित्तैकाग्रता ।

अर्थ— शम किसे कहते हैं ? मन रोकने को शम कहते हैं। दम का क्या अर्थ है ? नेत्र, कान,

जिह्वा, घ्राण और त्वचा आदि बाहरी इन्द्रियो के रोकने को दम कहते है। उपरम किसे कहते हैं? अपने निज धर्म का ही अनुष्ठान करना। अर्थात् शब्द आदि विषयो से इन्द्रियो को रोक कर और सब लौकिक विचारो से हटा कर केवल आत्मविचार में तत्पर रहना, इसे उपरम कहते हैं। तितिक्षा किसे कहते है? शीत, उष्ण, सुख, दु:ख, मान, अपमान आदि को धैर्य से सह लेना इसे तितिक्षा कहते हैं। श्रद्धा कौन सी वस्तु का नाम है? गुरु के वाक्यो को और वेदान्त के वाक्यो को विश्वासपूर्वक यथार्थ समझना श्रद्धा कहाती है। समाधान का अर्थ है? चित्त की एकाग्रता को अर्थात् गुरु और अधिकारी को बताना समाधान कहाता है। इन्हे ही शम आदि छ साधन कहते हैं।

मुमुक्षुत्वं किम्?, मोक्षो मे भूयादितीच्छा।

अर्थ— मुमुक्षुत्व का क्या अर्थ है? मेरा मोक्ष होवे ऐसी इच्छा का होना। अर्थात् 'मुझे किसी प्रकार

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांचो महा
भूतों से किया गया, कर्मों के द्वारा उत्पन्न सुख और
दु ख आदि के भोगने का प्रधान आश्रय, नाश होने
वाला और स्थिति, उत्पत्ति, वृद्धि, घटना-बढना, ढील
पडना और नाश रूप छओं विकार वाला स्थूल शरीर
कहलाता है। तात्पर्य यह है कि पृथिवी आदि पांच
महाभूतों के पञ्चीकरण से स्थूल शरीर उत्पन्न होता
है। महाभूतों के पञ्चीकरण का यह प्रकार है कि
प्रथम आकाश को दो भागों में बाटकर एक भाग को
अलग रख देना। फिर दूसरे भाग को चार भाग में
बाटकर अलग रखे हुए आधे भाग को इसी प्रकार
बाटे गये वायु के भागों में मिला देना। इसी भांति
वायु को विभाग करके उसे तेज भाग में मिला देना
तेज भाग को बांट कर जल भाग में मिला देना
जल को बाट कर पृथिवी में मिला देना। इन्हीं भागों
के मिलाव को पञ्चीकरण कहते है। इसी
पञ्चीकरण अवस्था का नाम स्थूलशरीर
है। जब फिर पृथिवी आदि भूतो के भागों को अलग

अलग करके अपने कारण महाभूतो में लीन कर देते हैं तब स्थूलशरीर का नाश हो जाता है। इस स्थूल-शरीर के सहायक उपादान कारण शुभ अशुभ कर्म हैं। शुभ अशुभ कर्मो से सुख-दु ख का भोग उत्पन्न होता है। स्थूलशरीर इनका भोग करता है। इस स्थूलशरीर की छ अवस्था होती है। प्रथम अवस्था अस्ति हैं। अस्ति शब्द का अर्थ है सत्ता अर्थात् होमा। द्वितीय अवस्था जनन, अर्थात् उत्पन्न होना है। तृतीय अवस्था वर्धन, अर्थात् कदाचित् बढना और कदाचित् घटना। चतुर्थ अवस्था विपरिणाम, अर्थात् क्रम से बढ़वा। पञ्चम अवस्था अपक्षय, अर्थात् वृद्ध आदि होने पर शरीर का शिथिल होना। और छठवीं अवस्था नाश, अर्थात् शरीर का पात होना। इसीको लोग स्थूलशरीर कहते हैं।

उक्त तत्व ज्ञान की महर्षियों ने ७ भूमिकाएं बताई हैं जैसे--

शुभेच्छा ननु तत्राद्या ज्ञान भूमिः प्रकीर्तिता विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनु मानसा सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्यादसंसक्तिश्च पञ्चमी पदार्थभावनी षष्ठी सप्तमी चाथ तुर्यगा।

१. शुभेच्छा – नित्यानित्य वस्तु विवेकादि पुरःसर फल पर्यवसायिनी मोक्षेच्छा शुभेच्छा

२. विचारणा – गुरुमुपसृत्य वेदान्त वाक्य विचारात्मक श्रवण मननात्मिका वृत्ति : सुविचारणा

३. तनुमानसा–निदिध्यासनाभ्यासेन मनस एकाग्रतया सूक्ष्मवस्तु ग्रहण

योग्यता तनुमानसा

४. सत्वापत्तिः—निर्विकल्प ब्रह्मा-त्मैक्य साक्षात्कारः सत्वापत्तिः

५. असंसक्ति- सविकलपक समाध्य भ्यासेन निरुद्धे मनसि निर्विकल्पक समाध्यवस्था असंसक्तिः

६. पदार्थाभावनी – असंसक्ति भूमिकाभ्यास पाटवाच्चिरं प्रपञ्चा-परिस्फूर्त्यवस्था पदार्थाभावनी

७. तुरीया – तुर्यगा—ब्रह्म ध्याना वस्थस्य पुनः पदार्थान्तरा परिस्फूर्ति-स्तुरीया ।

अर्थ,महर्षियों ने ज्ञान की ७ भूमिकाएं बताई हैं—

(१) शुभेच्छा, नित्य और अनित्य वस्तु के विवेक तथा वैराग्यादि के बाद मोक्ष के लिये तीव्र इच्छा ।

(२) विचारणा, गुरु के समीप जाकर वेदान्त वाक्यों का मन लगा कर श्रवण और अन्तःकरण से मनन करना ।

(३) तनुमानसा—निदिध्यासन (ध्यान) और उपासना के द्वारा मनकी एकाग्रता से सूक्ष्म वस्तु को ग्रहण करने की योग्यता उत्पन्न होजाती हैं । उपरोक्त ३ भूमिकाएं जाग्रत भूमिकाएं हैं । इनसे केवल ज्ञान उत्पन्न करने की योग्यता होजाती है ।

(४) सत्वापत्ति—निर्विकल्प (संशय-विपर्यय-रहित) ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार । इस भूमिका में "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का वास्तविक ज्ञान हो जाता है ।

(५) असंसक्ति— सविकल्प समाधि के अभ्यास से मन की वृत्तियों को रोकने पर जो निर्विकल्प

समाधि की स्थिति होती है उसे असंसक्ति कहते हैं। इसे सुषुप्ति भूमिका भी कहते हैं क्योकि इस भूमिका में सुषुप्ति अवस्था की तरह ब्रह्म से अभेद भाव प्राप्त हो जाता है, वह जगत प्रपंच को भुला देता है, परन्तु समय पर स्वयं ही उठता है और किसी के पूछने पर उपदेश भी करता है।

(६) पदार्था भावनी— असंसक्ति अवस्था के परिपाक से प्राप्त पटुता के कारण प्रपंच (ससार) का अभाव सुदीर्घ काल तक रहना। इस भूमिका को गाढ सुषुप्ति कहते हैं। इस में योगी स्वयं व्युत्थित होकर भोजनादि क्रिया नहीं करता पर परयत्न से कर लेता है।

(७) तुरीया— ब्रह्म चिन्तन मे निमग्न होकर पुन. किसी भी समय किसी भी पदार्थ की परिस्फूर्ति न होना।

शास्त्र का सिद्धांत है कि– वैराग्य, बोध तथा उपरम ये तीनो परस्पर के सहायक हैं। इनका भेद

ठीक-ठीक रीति से समझ लेना चाहिये। विषयों में दोषदृष्टि, वैराग्य का मुख्य कारण है। भोगों के प्रति दीनता का न रहना, वैराग्य का 'फल' माना जाता है। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन, ये तीनों बोध के मुख्य 'कारण' हैं। सत्य और मिथ्या का विवेक, बोध का 'स्वरूप' होता है। उपरति का मुख्य 'कारण' यमनियमादि हैं। बुद्धि का निरोध हो जाना, उपरति का 'स्वरूप' है। व्यवहार का समाप्त हो जाना उपरति का 'फल' माना गया है। यों इन तीनों के भेद का वर्णन है। इन तीनों मे तत्वबोध ही प्रधा है। क्योंकि यही साक्षात् मोक्ष का देने वाला है वैराग्य तथा उपरति ये दोनों इसी तत्व-बोध ज्ञान सहायक होते हैं।

वैराग्य— ब्रह्मलोक मिलने लगे और उ तृणतुल्य तुच्छ समझ कर छोड दिया जाय यह वैराग्य की अन्तिम दशा है।

उपरति— सोते हुए जैसे जगत् को भूल जा

है, जागते हुए भी जब कोई इसी प्रकार जगत् को भूल जाय (मानो जगत नाम की कोई चीज ही नहीं रही हो) बस इसी को उपरति की सीमा समझना। इस विषय मे अभ्यास यानी (पुरुषार्थ) की आवश्यकता है।
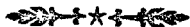
अत इसकी प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। बिना पुरुषार्थ किसी भी प्रकार का महत्व प्राप्त नहीं हो सकता। परिश्रम से दूर भागना अपने भाग्य को लात मारना है केवल भाग्य के भरोसे पर पडे रहने वाले दरिद्री एव निर्धन होते हैं। जो कार्य करना हो उसको पूर्ण उत्साह के साथ करना चाहिये। परिश्रम के द्वारा असभव काम भी बडी आसानी से हो जाना है। जो जितना अधिक परिश्रम करता है वह उतना ही ऊँचा पद प्राप्त कर लेता है। संसार मे कोई भी कार्य ऐसा नही है कि जिसे मनुष्य नहीं कर सके। मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्ति कार्य करने से ही बढती है। जैसे चलने की शक्ति चलने से, दौडने की शक्ति दौडने से, लिखने की शक्ति लिखने से, पढने की शक्ति पढने से, व्याख्यान देने की शक्ति व्याख्यान नेदे से वढती है, उसी प्रकार नित्य नियमित अभ्यास से शक्ति का विकास होता है। यदि हम बीस दिन बिस्तरे पर पडे रहें तो फिर चलने फिरने की शक्ति नहीं रहेगी। शक्ति का अभ्यास हैं अतः आत्म

अत. इसकी प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। बिना पुरुषार्थ किसी भी प्रकार का महत्व प्राप्त नहीं हो सकता। परिश्रम से दूर भागना अपने भाग्य को लात मारना है केवल भाग्य के भरोसे पर पड़े रहने वाले दरिद्री एव निर्धन होते हैं। जो कार्य करना हो उसको पूर्ण उत्साह के साथ करना चाहिये। परिश्रम के द्वारा असभव काम भी बडी आसानी से हो जाता है। जो जितना अधिक परिश्रम करता है वह उतना ही ऊँचा पद प्राप्त कर लेता है। संसार मे कोई भी कार्य ऐसा नहीं है कि जिसे मनुष्य नहीं कर सके। मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्ति कार्य करने से ही बढती है। जैसे चलने की शक्ति चलने से, दौडने की शक्ति दोडने से, लिखने की शक्ति लिखने से, पढने की शक्ति पढने से, व्याख्यान देने की शक्ति व्याख्यान नेदे से वढ़ती हैं, उसी प्रकार नित्य नियमित अभ्यास से शक्ति का विकास होता है। यदि हम बीस दिन बिस्तरे पर पडे रहे तो फिर चलने फिरने की शक्ति नही रहेगी। शक्ति का अभ्यास हैं अत. आत्म

मोह कर रक्खा है। श्रुति कहती है कि यदि पुरुष अपनी आत्मा को जान ले कि मैं यह आत्मा हू तो सर्वदा सुखी रहे। शम दम आदि का अभ्यास करके मोह निद्रा त्याग दे। विवेक के नेत्र खोल, मोह की नींद मत सो, विचार से काम ले मोह, रूप की जड से निकल आ। स्वप्नरूपी ससार को छोड कर परमात्म तत्व मे लीन हो। स्वप्न रूपी ससार का मोह छोड। यह ससार यथार्थ में तो एक स्वप्न ही है। रात्रि का स्वप्न छोटा स्वप्न है, और यह ससार वडा स्वप्न है। वास्त है यह स्वप्न ही। अपने भ्रम से यह सच्चा दीख रह है। जैसे अधेरे स्थान में पडी हुई रस्सी कोई देखत है तो अधेरे के कारण सर्प दीख पडता है इस लि भय होता है परन्तु जब कोई यथार्थ देखने वाल बताता है कि जिसको तू सर्प मान रहा है वह सर्प नह है, किन्तु वह तो एक रस्सी का टुकडा है, तब उसक भय जाता रहता है। इसी प्रकार सद् गुरु के वचनं द्वारा यथार्थ वोध हो जाने से समझने लग जाता कि अब मैं जीव नहीं हू कल्याण रूप शिव हूं।

अत मैं शिव हूँ, ब्रह्म हूं मैं आत्मा हूं, ऐसी स्थिति हो जाना और ब्रह्म का स्वरूप समझना, तथा ध्यान आदि का तरीका सब बताया जायगा, परन्तु मोक्ष के लिये प्रथम मन पर कब्जा करने की बडी भारी आवश्-कता है, क्योंकि इस जीव के बधन और मोक्ष का कारण मन ही है। ज्ञानी लोग इस मन को ही अविद्या कहते हैं, जिसके द्वारा यह सारा संसार भरमाया जा रहा है।

अब जिसके योग से यह मिथ्या ज्ञान हो रहा वह मन है। पाप पुण्य की प्राप्ति मन की स्थिति के अनुसार होती है।

(मन के विषय में शीशे का दृष्टात)

किसी किसी शीशे मे राक्षस के समान भयंकर और विकराल मुँह देख पडता है अथवा हाथभर लम्बा मुख देख पडता है इन बातो को सभीजानते हैं, जैसे यह शीशे का दोष है वही बात मनके लिये भी है। मनरूप शीशा यदि शुद्ध होता है अर्थात् मनमे यदि किसी प्रकार की वासना नही है तो अवश्यही आत्म-ज्ञान

होने में विलम्ब नही है । अतएव मनको वासना रहि करना चाहिये उसके शुद्ध हो जाने पर ब्रह्म साक्षा हो जाने में विलव नहीं अर्थात् जिस साधक ने अपन मन वश मे करलिया तो मानो सारे ससार पर विजय प्राप्त करली । यह मन ऐसा प्रबल है कि नाना प्रकार के यत्न करने पर भी वसमे नहीं हो सकता । इसलिये इसको बस मे करना महा कठिन है यह मन ही ससार रूपी बन्धन का कारण है अगर मन का नाश हो जाय तो सब पचों का नाश हो जाय । मन को वसमें करने के लिये अभ्यास की जरूरत है । मन घोडे के समान है, जो घोडे का पूछ पकडता है वह घोडे के पीछे-पीछे घसीटा जाकर गढ्ढे में गिर जाता है और जो उस पर सवार होता है वह बडे आनन्द के साथ सैर करता है अत मन पर सवारी करनी सीखनी चाहिये । मन पर सवार होना कोई बडी बात नहीं है परन्तु पूर्ण अभ्यास की आवश्यकता है । मनका अभ्यास यह है कि, किसी विषय में लगाना हो तो मन को चारों तरफ से खींच कर एक स्थान में लाना

चाहिये और ज्यों ही मन भाग जाय त्यों ही फिर खींचकर उसी विषय में लगाना चाहिये। बारम्बार ऐसा करने से मन एक स्थान मे जम जाता है। मन मे एक साथ कई ज्ञान नहीं रह सकते। कोई कोई वक्त चिन्ता जनक बात मन मे ऐसी जम जाती है कि उसको भूलना चाहे और दूसरी बातपर ध्यान करना चाहे तो पहली मन पर जमी हुई बात भूलनी अत्यन्त कठिन हो जाती है इसीलिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि एक दफे मनको किसी भी विषय पर पक्का अभ्यास करके जमा लिया जाय तो फिर नही उखडेगा। अब जो जानने तथा ध्यान करने के लिये मन्त्र आदि हैं, यानी जिसका ध्यान करके महात्मा लोग परमपदको प्राप्त हो जाते हैं, उसी पर ब्रह्म परमात्मा को शास्त्रोक्त वर्णन किया जाता है। श्री भगवान के हजारो नाम हैं परन्तु उनमें से थोडे से नाम वेदान्त शास्त्र के अनुसार नीचे लिखे गये हैं।

ब्रह्म, परब्रह्म, विष्णु, शिव, सच्चिदानद, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, निरजन, निराकार, निर्गुण, विभू,

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च

["श्वेताश्वेतरोपनिषद्"]

अर्थात् जगत् में केवल एक ही देव है जो सर्व व्यापी सम्पूर्ण प्राणियो के हृदय में छिप रहा है।

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णु
स्वयं मिन्द्रः स्वयं शिवः।
स्वयं विश्व मिदं सर्व
स्वस्माद न्यन्न किंचन ॥

स्वय आत्मा ही ब्रह्मा, वही विष्णु, वही इ वही शिव और वही यह सारा विश्व है। आत्मा भिन्न और कुछ भी नहीं है। सारे विश्व में केवल ए ही आत्मा है परन्तु नाम अनेक है। जैसे घड मटकी, कुंजा, सिकोरा, हाडी, आदि नाम अलग-अल हैं, परन्तु है सब मिट्टी स्वरुप। उसी प्रकार एक ह परमात्मा को व्यक्त, अव्यक्त, निर्गुण, साकार निराकार, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, ईश्वर, अल्लाह

वासुदेव, नारायण तथा राम आदि नामो से पुकारते हैं। इन नामो के विषय मे कुछ जानने की आवश्यकता है जैसे उदाहरणार्थ यह राम का नाम महाराजा दशरथ सुत मर्यादा पुरुषोत्तम राजा श्री रामचन्द्र का है या और तो। शास्त्रो मे समाधान मिलता है कि।

रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषुच।
अन्तरात्म स्वरूपेण यच्च
रामेति कथ्यते ॥

अर्थात् यह राम का नाम उसी परमात्मा का है जो निराकार रूप से स्थावर और जगम सारे भूत प्राणियों में रमण कर रहा है।

राम सब के घट बसे,
पण विरला जांणै कोय।
मन्दिर मठ में ना मिलै,
तूं अपणें अन्दर जोय॥

इन में द्रव्य मिल्यो नहीं दीखत
त्योंहि देह में आत्म ज्ञान
आत्मा ही ब्रह्मा है यह आत्मा महेश है।
आत्मा ही राम और आत्मा गणेश है॥
आत्मा ही विष्णु और आत्मा दिनेश है।
प्राणियों के सर्वाधार आत्मा ही शेष है॥
आत्मा ही पूज्य और आत्माही सेव है।
आत्मा ही इन्द्र है यह आत्मा ही देव है
आत्मा ही प्रिय है यह आत्मा ही पीव है।
आत्मा सिवाय कोई माया है न जीव है॥
आत्मा ही राव है यह आत्मा ही रंक है।
ऊंच और नीच सब आत्मा निशंक है॥

कीड़ी कुंजर मकोड़ा में
आत्मा समान है ।
सच्चा ज्ञान ये ही है,
जहां आत्मा की पहचान है ॥
आत्मा ही छाया और
आत्मा ही धूप है ।
चांद सूरज और तारे
आत्मा के रूप हैं ॥
ईश्वर जीव आत्मा,
अवतार आपो आप है ।
और सभी भ्रमरा है,
ज्यूं जेवड़ी का सांप है ॥
आत्मा ही सृष्टि करता,

आत्मा ही काल है ।
आत्मा सिवाय और
सभी माया जाल है ॥
आत्मा का ध्यान करना,
ये ही ईश्वर ध्यान है ।
आत्मा को जान लेना,
ये ही पूरा ज्ञान है ॥
प्रकृति परमाणु पुरुष
आत्मा आधीन है ।
ईश्वर, जीव-आत्मा,
कोई दोय है न तीन है ॥
नाना ईश्वर कहने वाले,
स्याना भी अजाणा है ।

ब्रह्म केवल एक है यह
शंकर का प्रमाण है ॥
गीता कार आपको यह,
आत्मा ही माना है ।
आत्मा का ज्ञान पांडव
अर्जुन ने भी माना है ॥
आत्मा ही भैरूं और,
आत्मा ही भोपा है ।
आत्मा ही सारे प्राणी,
आत्मा आसोपा है ॥
जंगलों में जांय कहा
फल मूल खाए कहा ।
बाल को बढाये कहा

चाहे अंग नंगा है ॥
गंगाजल नहाये कहा
रात को जगाये कहा
तन को तपाये कहा
वस्त्र गेरु रंगा है
द्वारका को जाये कहा
छाप को लगाये कहा ।
मूंड को मुडाये कहा
छार लाये अंगा है ॥
नाना कष्ट सहे और भेख
धरे होत कहा ।
आत्मा को जाण ले तो
घर माही गंगा है ॥

जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी बैठ
मैं भोली ढूंढण गई रही किनारे बैठ
जिन कारण जग ढूढिया सो है हृदय माय।
आडा पड़दा भ्रम का ताते दीसत नाही॥
कस्तूरी नाभी वसे, हिरण फिरे बन माहिं
ज्यूं ईश्वर घट में बसे मूर्ख जाणत नाहिं

भावितम् तीव्र वेगण
वस्तु यन्निश्च यात्मना
पूमास्तध्धि भवेच्छीघ्रज्ञयं भ्रमर कीट वत्

तीव्र वेग से निश्चयात्मक वृत्ति द्वारा जो पुरुष जिस वस्तु का ध्यान करता है वह भ्रमर और कीट के समान शीघ्र ही उसी रूप को प्राप्त हो जाता। इसी प्रकार साधक के निरन्तर अभ्यास के द्वारा जीवात्मा परमात्मा में मिल जाता है। अथवा जैसे घट के फूट जाने पर घटाकाश महाकाश के साथ एक हो

जाता है उसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकीभाव हो जाता है। यह जीव ब्रह्म से पहले भी भिन्न नहीं था परन्तु जब तक अबोध था तब ही तक अलग था ब्रह्म और जीवात्मा के अभेद का ज्ञान ही भव बन्धन से मुक्त होने का कारण है। जिस के द्वारा बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्म प्राप्त कर लेता है वह फिर जन्म मरण रूप संसार चक्र में नहीं पड़ता।

वेदान्त ग्रंथों में आत्मा को जानने का सबसे सरल साधन यह बताया है कि मैं आत्मा हूं इस शब्द का निरन्तर चिंतन करते रहना। इस अभ्यास से चिरकाल से मैं शरीर हूं यह मिथ्याज्ञान थोड़े ही समय में छूट जाता है अब जो आत्म ज्ञानी नहीं है और ब्रह्म शब्द की रट लगा रहा हो तो, वह मनमें समझता रहता है कि मैं ब्रह्म नहीं हूं केवल ऐसा जप मात्र कर रहा हूं परन्तु मनोविज्ञान के नियमानुसार कुछ समय के बाद उस के मनपर सूचना का प्रभाव पड़ने लगता है और कुछ ब्रह्म भान होने लगजाता है। फिर अंत में जब सूचना का पूर्ण प्रभाव उसके मनपर छा जाता है तो

उस समय, सब कुछ भूलकर केवल ब्रह्म ही शेष रह जाता है अर्थात् ब्रह्म रूपी समुद्र में डूबा रहता है चो तर्फ ब्रह्म ही घिरा रहता है। जैसा मुडकोपनिषद।

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूट
स्थेव जितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यतेयोगी सम लोष्टा
सम कांचनः ॥

ज्ञान और विज्ञान से तृप्त है अन्त करण जिसका, विकार रहित है। स्थिति जिसकी और भली प्रकार से जिसने इन्द्रियो को जीत लिया है। ऐसा योग युक्त ज्ञानी मिट्टी पत्थर और स्वर्ण को समान भाव से देखता है ऐसा ज्ञान प्राप्त योगी जीवन मुक्त है।

(गीता अ. ६-८)

विद्या विनयसंपन्ने
ब्रह्मणे गवि हस्तिनी।

जाता है उसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकीभाव हो जाता है। यह जीव ब्रह्म से पहले भी भिन्न नहीं था परन्तु जब तक अबोध था तब ही तक अराग था ब्रह्म और जीवात्मा के अभेद का ज्ञान ही भव बन्धन से मुक्त होने का कारण है। जिस के द्वारा बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्म प्राप्त कर लेता है वह फिर जन्म मरण रूप ससार चक्र में नहीं पडता।

वेदान्त ग्रथो में आत्मा को जानने का सबसे सरल साधन यह बताया है कि मैं आत्मा हू इस शब्द का निरन्तर चिंतन करते रहना। इस अभ्यास से चिरकाल से मैं शरीर हू यह मिथ्याज्ञान थोडे ही समय में छूट जाता है अब जो आत्म ज्ञानी नहीं है और ब्रह्म शब्द की रट लगा रहा हो तो, वह मनमें समझता रहता है कि मैं ब्रह्म नहीं हूं केवल ऐसा जप मात्र कर रहा हू परन्तु मनोविज्ञान के नियमानुसार कुछ समय के बाद उस के मनपर सूचना का प्रभाव पडने लगता है और कुछ ब्रह्म भान होने लगजाता है। फिर अत में जब सूचना का पूर्ण प्रभाव उसके मनपर छा जाता है तो

उस समय सब कुछ भूलकर केवल ब्रह्म ही शेष रह जाता है अर्थात् ब्रह्म रूपी समुद्र में डूबा रहता है चो तर्फ ब्रह्म ही घिरा रहता है । जैसा मुडकोपनिषद ।

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूट

स्थेव जितेन्द्रियः ।

युक्त इत्युच्यतेयोगी सम लोष्टा

सम कांचनः ॥

ज्ञान और विज्ञान से तृप्त है अन्त करण जिसका, विकार रहित है । स्थिति जिसकी और भली प्रकार से जिसने इन्द्रियो को जीत लिया है । ऐसा योग युक्त ज्ञानी मिट्टी पत्थर और स्वर्ण को समान भाव से देखता है ऐसा ज्ञान प्राप्त योगी जीवन मुक्त है ।

(गीता अ ६–८)

विद्या विनयसंपन्ने

ब्रह्मणे गवि हस्तिनी ।

के समान जिसका पराक्रम है अनन्त इद्रों के समान जिसका ऐश्वर्य है करोडो काम देवो के समान जिसकी सुन्दरता है, असख्य पृथ्वियो के समान जिसमें क्षमा है, इक्कीस स्वर्ग और सात पाताल मिलकर एक ब्रह्मांड बना है इस प्रकार के अनन्त ब्रह्मार्डों में केवल यही व्यापक है। अनन्त ब्रह्मार्डों के नीचे ऊपर सब जगह वह है। ब्रह्म के बिना अणु मात्र भी जगह खाली नहीं है। ब्रह्म का रूप ही ॐकार है। आद्यवेद ओ३म् है। वेद ॐ कार का विस्तार है। उसके विस्तार में ऋक, यजु, साम और अथर्व वेद है। यह ॐ कितना गंभीर अर्थ वाला है। ॐ पर ब्रह्म है जिसको ब्रह्म बीज भी कहते हैं। जिस महाशक्ति ने यह सब जगत् उत्पन्न किया है, वेदो से लगाकर समस्त धर्म-ग्रन्थ और ससार भर के समस्त विद्वान जिसकी उपासना करते हैं, जो परमाणु से लगाकर अनन्त आकाश के भीतर बाहर भरा हुआ है जो अपने अनन्त सामर्थ्य से अनन्त लोकों को धारण कर रहा है वह सारे विश्व में केवल एक ही चेतन शक्ति के रूप में व्यापक हो

रहा है जिसके प्रकाश से सूर्यादिलोक प्रकाशित हो रहे हैं। उसके ज्ञान से संसार के समस्त क्लेश नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है। वही प्रणव ॐ कार सबके इष्ट देव हैं, जप करने के लिये सब से श्रेष्ठ मन्त्र ॐ है और दूसरा गायत्री मन्त्र है। वेदो मे, दशो उपनिषदो मे, शास्त्रो में इन्हीं दो मन्त्रो के जप का विधान मिलता है। 'सोहम्' के जपका विधान उपरोक्त किसी ग्रंथ में नहीं मिलता परन्तु कई महात्मा लोग 'सोऽहम्' के मन्त्र के पक्षपाती है। प्रणव चिंतन (ब्रह्म—साक्षात्कार) का दृष्टांतो द्वारा समर्थन है। अब "ॐ" इस अक्षर से ही परम पुरुष का ध्यान करना चाहिये "ॐ" इस अक्षर के द्वारा ही आत्म चिंतन करना चाहिये। श्रुति—प्रणव-केवल एक मात्र ओम् का जप, ओम् की आराधना, ओम् का श्रवण आदि सब समय मनुष्य को शान्ति देता है और ओम्कार के जपसे परलोक सुधरता है इसीलिये भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है ओम् इस अक्षर ब्रह्म का जप करते हुए जो शरीर छोडता है वह

कि सब तपों से बडा तप ओम् का जप है। अब प्रातः काल और सायकाल ठीक समयपर एकान्त स्थानपर सुखपूर्वक आसन पर बैठ कर सकल्प करे कि आज इस समय इतनी देरतक आत्म ज्ञान के लिये ॐ कार मत्र का जप करूगा जैसे किसी दूसरे मनुष्य से कहते हैं इस तरह अपने आपको कहना चाहिये। इसका मतलब यह है कि जितनी देर का सकल्प किया जाय उतनी देरतक बिलकुल पूर्ण शान्ति से चित्त जप करने में लगा रहेगा। यह बात महात्माओ से सुनी है।

ओम् का संक्षिप्त अर्थ

अ+उ+म् इन अक्षरो के मेल से ॐ (ओम्) यह शब्द बनता है। अकार का अर्थ है, १ विराट् २ अग्नि, ३ विश्व, उकार का १ हिरण्य गर्भ, २ वायु, ३ तैजस, मकार का १ ईश्वर, २ आदित्य, ३ प्राज्ञ—आदि। इन शब्दों के अलग-अलग अर्थ नीचे लिखे अनुसार हैं—

अ का अर्थ

(१) विराट (विविधं चराचरं जगत् राजयते प्रकाशयते यः स विराट्)

विविध चराचर जगत् को प्रकाश करने वाले, उत्पन्न करने वाले परमात्मा का नाम विराट् है।

(२) अग्निः अच्यते पूज्यते सत् क्रियते वेदादिभिः विद्वद्भिः शास्त्रैश्चेत्यग्निः)

वेदादि समस्त ग्रन्थ और ससार के समस्त विद्वान जिसकी पूजा करते हैं– उपासना करते हैं उसे परमेश्वर का नाम अग्नि है।

(३) विश्व (विष्टानि अकाशादीनि यस्मिन् अथवा विष्टोस्ति प्रकृत्यादिषु यः स विश्वः)

जो परमाणु से लगाकर आकाश पर्यन्त के भीतर

[३] प्राज्ञ (प्रकर्षेण जानातिसर्वं जगत् स प्राज्ञः)

जो सबके अन्तर्यामी होने से सब कुछ जानते हैं, इसलिये परमेश्वर का नाम प्राज्ञ है।

धारणा के विषय का इस प्रकार वर्णन देखा गया है। बुद्धि है सारथी जिसका, ऐसे शरीररूपी रथवाले जीवरूपी स्वामी रथी को चाहिये कि मनरूपी लगाम से श्रोत्र आदि इन्द्रियरूपी घोडों को शब्द आदि विषयरूपी कुमार्गों से हटाकर नाना प्रकार के कर्मों से विक्षिप्त मनकी सत्य असत्यका विवेक करने वाली बुद्धि से शुभ अर्थ में धारण और ध्यान करे।

ध्यान ऐसा न हो कि—

माला तो करममें फिरे,
जीभ फिरे मुख माँय
मनवा तो चहों दिश फिरे
यह तो सुमिरण नाहि

माला फेरत जग मुआ
पाया न मन का फेर
करका मणका छोड कर
मनका मणका फेर

ध्यान

"ध्याता— ध्यय— ध्यान" ध्यान करने वाले को ध्याता कहते हैं। जिसका ध्यान करता है उसे ध्येय कहते हैं। ध्याता और ध्येय को जोडने वाली क्रिया को ध्यान कहते हैं। जैसे एक मनुष्य शिवका ध्यान करता है तो वह मनुष्य ध्याता है। ध्येय शिव है। मनुष्य और शिव को मिला देने वाली क्रिया का नाम ध्यान है। ध्यान से मन पर इतना अधिकार करलेना-काबू करलेना कि जितनी देर तक चाहे उसी वस्तु पर लगा रहे अथवा जिस विचार को उठने देना चाहे तो उठने दे और जिसको न उठने देना चाहे उसको न

दान कारण मानते हैं दोनों के मतसे ध्याता जीवात्मा है और ध्येय परमात्मा है। सिद्धान्त प्राय एक ही है।

एक हि साधे सब सधे
सब साधे सब जाय
जो तूं सींचे पेड़ को,
फूले फले अघाय ॥

ओमिति ब्रह्म। ओमितिदं सर्वं। ओम् यह ब्रह्म है। ओम् यह सब कुछ है। अब बायें हाथ में जल लेकर दहने हाथ से शरीर पर छींटा लगाता जाय और यह मंत्र बोलता जाय-'मन्त्र' ॐ अपवित्र पवित्रोवा सर्वावस्था गतोऽपिवाय स्मरेत् सच्चिदानन्द सवाह्या भ्यन्तर शुचि ॐ विष्णु पुण्डरीकाक्ष पुनातु।

अंगुष्टमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।

तंस्व च्छरीरात्प्र वृहेन्मुंजा दिवषी
का न्धैर्येण ।
तंविद्याच्छुक्र मम्तं विद्याच्छुक्र
मम्त मिति

अंगुष्ट मात्र पुरुष जो अन्तरात्मा है वह सर्वदा मनुष्यो (प्राणियो) के हृदय मे स्थित है । उसे मूंज की सीक के समान अपने शरीर से धैर्य पूर्वक बाहिर निकाले अर्थात् शरीर से पृयक करे । इस प्रकार अलग करें कि जैसे मूंजसे उसके भीतर रहने वाली सीक निकाली जाती है । फिर शरीर से बाहिर निकाले हुए उस अगुष्ट मात्र पुरुष को ही ब्रह्म जाने ।

कठोपनिषद २-३-१७

ब्रह्म का सर्व व्यापकत्व

ब्रह्मै वेदमम्तं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद्
ब्रह्म दक्षिणा तश्चो त्तरेण ।

उद्धृतनग नगभिदनुज
दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे ।
दृष्टे भवति प्रभवति न
भवति किं भवतिरस्कारः ॥ ४ ॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता
सदा वसुधाम् ।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता
भवतापभीतोऽहम् ॥५॥
दामोदर गुणमन्दिर
सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द ।
भवजलधिमथनमन्दर
परमं दरमपनय त्वं मे ॥६॥

हे नाथ ! [मुझमे और आपमे] भेद न होनेपर भी, मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं, क्योकि तरङ्ग ही समुद्रकी होती हैं, तरङ्गका समुद्र कहीं नहीं होता ॥३॥ हे गोवर्धनधारिन् ! हे इन्द्रके अनुज (वामन) ! हे राक्षसकुलके शत्रु ! हे सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रवाले ! आप-जैसे प्रभुके दर्शन होनेपर क्या संसारके प्रति उपेक्षा नहीं हो जाती ? [अपितु अवश्य ही हो जाती है] ॥ ४ ॥ हे परमेश्वर ! मत्स्यादि अवतारों से अवतरित होकर पृथ्वी की सर्वदा रक्षा करने वाले आपके द्वारा ससार के त्रिविध तापो से भयभीत हुवा मैं रक्षा करने के योग्य हूँ ॥ ५ ॥ हे गुण मन्दिर दामोदर ! हे मनोहर मुखारविन्द गोविन्द ! हे ससार समुद्र का मन्थन करने के लिये मन्दराचल रूप ! मेरे महान् भय को आप दूर कीजिये ॥ ६ ॥

नारायण करुणामय शरणं
करवाणि तावकौचरणौ ।

देह से भिन्न ब्रह्म शब्द वर्णन

ब्रह्मैवाहं समः शान्तः
सच्चिदानन्द लक्षणः ॥
नाहंदेहोह्यसद्रूपोज्ञान
मित्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥

मैं सम, शान्त और सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म हूँ असत्स्वरूप देह मैं नहीं हू इसी को बुधजन ज्ञान कहते हैं।

निर्विकारो निराकारो
निरवद्योऽहमव्ययः ।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञान
मित्युच्यते बुधैः ॥ २ ॥

मैं निर्विकार, निराकार, निर्मल और अविनाशी हू, असत्वस्वरूप देह मैं नहीं हूं इसको बुधजन ज्ञान कहते हैं।

निरामयो निराभासो
निर्विकल्पोऽहमाततः ।
नाहं देहो ह्यद्रूसपो
ज्ञान मित्युच्यते बुधैः ॥३॥

मैं दुःखहीन, आभासहीन, विकल्पहीन और व्यापक हूं, असत्स्वरूप देह में नहीं हूं इसी को बुधजन ज्ञान कहते हैं।

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो
नित्यमुक्तोऽहमच्युतः ।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो
ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥ ४ ॥

मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, नित्यमुक्त अच्युत हूं, असत्स्वरूप देह में नहीं हूं इसीको बुधजन कहते हैं।

सिवाय और कुछ भी नहीं है केवल मैं ही मैं हूं।

तत्वों से परे ऐसा परमात्मा मैं हू इस मध्य से परे ऐसा परमशिव मैं हू माया से परे ऐसा परम ज्योति स्वरूप अव्यय मैं हू मेरे सिवाय और कुछ नहीं है केवल मैं ही मैं हू।

मैं नाम रूप से पृथक हूँ, शुद्ध चैतन्य ही मेरा स्वरूप है। मैं अच्युत हूँ, सुख स्वरूप हूँ अव्यय हूँ मैं ही मैं हू मेरे सिवाय और कुछ नहीं है केवल मैं ही मैं हूं।

मैं तीनों गुणों से रहित हूँ और ब्रह्मा आदि का भी साक्षी हूँ मेरे आनन्द का कोई पार नहीं है, मैं अव्यय हूँ मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं केवल मैं ही मैं हू।

सबके अन्तर्यामी स्वरूप मैं ही स्थित हू कूटस्थ मैं हूँ, सब स्थान पर विराजमान मैं हूँ, और उपाधि रहित परमात्मा भी मैं ही मैं हू मेरे सिवाय और कुछ नहीं है केवल मैं ही मैं हू।

मैं ही ज्ञान घन हू और विज्ञान घन भी मैं ही

हू मैं अकर्ता मैं अभोक्ता और अव्यय हूँ और मैं ही मैं हू मेरे सिवाय और कुछ नही केवल मैं ही मै हूँ ।

(ब्रह्म ज्ञान माला)

इन शब्दों की ध्वनि

नित्य छू मैं नित्य छूं नित्य छू मैं नित्य छू
नित्य छू मैं नित्य छू इस विश्व व्यापक ब्रह्म छू

अब देहद्रष्टा ब्रह्म शब्द वर्णन

मैं अजर हूँ मैं अमर हू मैं एक रस मैं निर्मल-निर्लेप और सर्व शक्तिमान परमानन्द स्वरूप ब्रह्म छू अर्थात् यह हाड मास मय क्षण भगुर देह मैं नही हू किन्तु इस देह का द्रष्टा ब्रह्म छू ॥ १ ॥

मैं शुद्ध हूँ मैं बुद्ध हूँ मैं सिद्ध हू मैं निरजन निराकार और सर्व व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म छू अर्थात् यह हाडमासमय क्षण भगुर देह मैं नही हू किन्तु इस देह का द्रष्टा ब्रह्म छू ॥ २ ॥

मैं सत्य हूँ मैं नित्य हूँ मै मुक्त हूँ, मै चेतन शान्त और सर्वाधार चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म छू अर्थात् यह

नित्य तत्त्व को प्राप्त होता है, वह शिव में ही हूँ।

यदानन्दरूपं प्रकाशस्वरूपं
निरस्तप्रपंचं परिच्छेदशून्यम्
अहंब्रह्मवृत्येकगम्यं तुरीयं
परं ब्रह्म नित्यं शिवः केवलोऽहम् २

जो आनन्द रूप, प्रकाश,—ज्ञान स्वरूप, प्रपचों से रहित, परिच्छेद से शून्य—व्यापक, अह ब्रह्म—मैं ब्रह्म हू, मात्र इस वृत्ति से जानने योग्य तुरीय-तीनों अवस्थाओं का साक्षी चौथा, परब्रह्म और नित्य है, वही शिव मैं हूँ।

यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं
विनष्टश्च सद्यो यदात्मप्रबोधे
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं
परं ब्रह्म नित्यं शिवः केवलोऽहम् ३

जिसके अज्ञान से सपूर्ण विश्व-जगत् भासता है

और जिस आत्मा स्वरूप के प्रबोध-ज्ञान से शीघ्रही नष्ट हो जाता है, जो मन वाणी से अतीत- अत्यन्त शुद्ध, नित्य मुक्त, परब्रह्म और नित्य है वह ही शिव मैं हू ॥

निषेधे कृते नेति नेतीति वाक्यैः
समाधिस्थितानां यदाभाति पूर्णम् ।
अवस्थात्रयातीतमेकं तुरीयम्
परं ब्रह्म नित्यं शिवः केवलोऽहम् ४

'नेति नेति' यह नही यह नही इस प्रकार श्रुति वाक्यो से निषेध-करने से समाधि मे स्थित योगियो को जो सपूर्ण भासता है, जो तीनो अवस्थाओ से अतीत एक तुरीय—चौथा परब्रह्म और नित्य है, वह ही शिव मैं हूँ ।

यदानन्दलेशैः समानन्दि विश्वं
यदाभाति सत्त्वे तदाभाति सर्वम् ।

यदालोचने रूपमन्यत्समस्तं

परं ब्रह्म नित्यं शिवः केवलोऽहम् ५

जिसके थोडे से आनन्द से विश्व-जगत् आनन्द वाला होता है, जब वह अन्त करण मे प्रकाश करता है, तब सब दिखाई देता है, अन्य समस्त रूप जिसके नेत्र हैं, जो परब्रह्म और नित्य है, वह ही शिव मैं हूं।

अनंतं विभुं सर्वयोनिं निरीहं

शिवं संगहीनं यदोंकारगम्यम्।

निराकारमत्युज्जवलं मृत्युहीनं

परं ब्रह्म नित्यं शिवः केवलोऽहम् ६

जो अन्त रहित, विभु, व्यापक, सर्व योनि रूप, चेष्टा रहित शिवरूप, संगरहित, जो ओंकार से समझने

योग्य, आकार रहित, अत्यन्त शुद्ध, मरण से रहित, परब्रह्म और नित्य हे, वह ही मैं शिव हूँ।

यदानन्दसिन्धौनिमग्नः पुमान्स्या-
दविद्याविलासः समस्त प्रपंचः।
यदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं
परं ब्रह्म नित्यं शिवः केवलोऽहम् ७

जिस आनन्द रूपी समुद्र मे डूब कर मनुष्य के लिये समस्तप्रपच अविद्या का विलासरूप हो जाता है जब कोई आश्चर्य मन मे नही उठता, जो निमित्त-कारण परब्रह्म और नित्य है, वही शिव मैं हू।

स्वरूपानुसंधानरूपां स्तुतिं यः
पठेदादराद्भक्तिभावो मनुष्यः।
शृणोतीह वा नित्यमुद्युक्तचित्तो
भवेद्विष्णुरत्रै व वेद प्रमाणात् ८
अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो
विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि

है, जिस भांति पृथ्वीपर उत्पन्न हुई सृष्टिमात्र कालसे मरकर, जलकर, दबकर, मिट्टी हो जाती है परन्तु मनुष्य आदि प्राणियों की उत्पत्ति के विषय में पूर्ण ज्ञान आज तक किसी को भी नहीं हुआ है, यह ज्ञान भविष्य में भी होना असम्भव है क्योंकि वीर्य जैसी द्रव वस्तु से देह इन्द्रिय आदि नाना अंग प्रत्यंग बन जाते हैं तथा गर्भ पात्र में पड़ा हुआ वीर्य चेतन हो जाता है, उसके हाथ पैर मस्तक आदि नाना अकुर फूट आते है और पूरा समय होने पर माता के पेट से बाहर आजाता है और ऐसे ही छोटे से बीज में बड़ आदि बडे बडे पेड छिपे रहते हैं।

अब उपरोक्त विषयों से मिलता जुलता कुछ और भी लेख लिखा जा रहा है। आशा है कि सज्जन गण इस को भी अपनायेंगे।

★०★

थोड़े शब्दों में

धर्म के विषय में शास्त्रोक्त अनेक उपदेश

ब्रह्म[१] सत्यं, जगन्मिथ्या[२],

ईश अंश निज मानले[३]।

काम कर फल त्याग कर[४] के

दास जग का जाण ले ॥

क्षमा[५], दया[६], तप[७], सत्य-वद[८],

मोह[९], क्रोध[१०], तृष्णा[११] छोड़-दे।

मैं कौन हूँ[१२] यह जान कर

कोई कहे हरि मथुरा मांही ॥
है, हरि है, हरि कहे सगरे पण,
है हरि कहा केई जाणत नाहीं ।
इस पर सत पुकार कहे भाई,
है हरि अपने हृदय मांही ॥
कई एक जात प्रयाग बनारस,
कई गया जगदीश ही ध्यावे ।
कई मथुरा हरिद्वार में जोवत,
कई यमुना कुरु क्षेत्र जावे ॥
कई पुष्करजी अरु पंच तीर्थ,
दोड़ ही दोड़ द्वारका जावे ।
आतम द्रव्य गड्यो घर भीतर,
बाहर ढूंढे क्यों कर पावे ॥
ढूंढ फिरे चहुं खूंट के भीतर,
आतम राम मिलन के तांई ।
केते तीरथ खोज फिरें अरु,
केते जाय बसे बन मांही ॥
केते बन बन विचरत ढूंढे,

केते अग विभूति रमाहिं ।
उनको संत कहे समझाय के,
हैं हरि हृदय तेरे ही माहीं ॥

आतम रूपी साइया,
घट घट रहा समाय ।
चित्त चक मक लागे नहीं,
तातें बुझ बुझ जाय ॥
जिन कारण जग ढूढिया,
सो हैं हृदय माहिं ।
आडा परदा भ्रम का,
ताते दीसत नाहिं ॥

घट घट ईश्वर जानिये ऊंच नीच नहीं कोय।
जैसी जिसकी भावना तैसो ही फल होय॥

इसलिये राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, माता, पिता, गुरु, आचार्य आदि सब को शिव स्वरूप समझ कर मनन करना चाहिये ।

सब जग आतम रूप है भला बुरा नहि कोय।
जैसी जिसकी भावना तैसा ही फल होय॥
राम कहो चाहे श्याम कहो पर,
ध्यान लगे तो एक ही फल है।
न्यारे न्यारे नाम रक्खे पर,
आखर आतम एक अचल है॥
नदिया छिल्लर कुण्ड बावडी,
पोखर कुवा सागर जल है।
रंग रूप कैसे ही हो पर,
आखर को सब जल ही जल है॥

शील सो न न्हान कोई विद्या सो न दान कोई।
ज्ञान सो न दीपक ओर सूरत सो न सेवरा॥
मूर्ख सो न ताप कोई आतम सो न जाप कोई।
आत्मा सो देव नहीं देही सो न देवरा॥
विद्या, धन, धन, रूप, यश कुल, सुत, वनिता, मान।
सभी सुलभ संसार मे दुर्लभ आतम ज्ञान॥
विप्र जो वेद पढे तो कहा,
जब जानि पडी नहीं वेदकी बानी।
गायक गाए गावो तो कहा,

जब राग कला सुर ताल न जानी ॥
जोगी विभूति लगाई तो कहा,
जब जोग कला तन मे नहीं आनी।
राम को नाम लियो तो कहा,
राम कौन यह बात न जानी ॥

लियो न निज सुख ब्रह्म को,
धरयो न दिल बिच ध्यान।
घर का रहा न घाट का,
ज्यूं धोबी का स्वान ॥
ना सुख धन अरु धाम मे,
ना सुख भूप भये।
सर्व सुखी या जगत मे,
आतम ज्ञान भये ॥

(२) जगत मिथ्या

इस विषय मे कइयो का कहना है कि जगत मिथ्या कैसे है, खाते हैं, पीते हैं, व्यापार करते हैं,

सब जग आतम रूप है भला बुरा नहि कोय।
जैसी जिसकी भावना तैसा ही फल होय॥

राम कहो चाहे श्याम कहो पर,
ध्यान लगे तो एक ही फल है।
न्यारे न्यारे नाम रक्खे पर,
आखर आतम एक अचल है॥
नदिया छिल्लर कुण्ड बावडी,
पोखर कुवा सागर जल है।
रंग रूप कैसे ही हो पर,
आखर को सब जल ही जल है॥

शील सो न न्हान कोई विद्या सो न दान कोई।
ज्ञान सो न दीपक और सूरत सो न सेवरा॥
मूर्ख सो न ताप कोई आत्म सो न जाप कोई।
आत्मा सो देव नहीं देही सो न देवरा॥

विद्या, बल, धन, रूप, यश कुल, सुत, वनिता, मान।
सभी सुलभ संसार मे दुर्लभ आतम ज्ञान॥

विप्र जो वेद पढे तो कहा,
जब जानि पडी नहीं वेदकी वानी।
गायक गाए गायो तो कहा,

जब राग कला सुर ताल न जानी ॥
जोगी विभूति लगाई तो कहा,
जब जोग कला तन मे नहीं आनी ।
राम को नाम लियो तो कहा,
राम कौन यह बात न जानी ॥

लियो न निज सुख ब्रह्म को,
धरयो न दिल बिच ध्यान ।
घर का रहा न घाट का,
ज्यूं धोबी का स्वान ॥
ना सुख धन अरु धाम मे,
ना सुख भूप भये ।
सर्व सुखी या जगत ने,
आतम ज्ञान भये ॥

(२) जगत मिथ्या

इस विषय मे कइयो का कहना है कि जगत मिथ्या कैसे है, खाते हैं, पीते हैं, व्यापार करते हैं,

एक दिन दुल्हा बनत बराती नौबत घुडत निशान।
एक दिन डेरा होय जगल मे माटी भखैं स्वान ॥
सदा किसी को सुख नहीं मिलता नियम ईश का जाण।
सुख की आश सदा जो करता वह है निपट अजान ॥
भावी बडी बलवान है पुरुष नहीं बलवान ।
काबा लूटी गोपिका वही अर्जुन वही बाण ॥
दीन कह धनवान सुखी,
धनवान कह सुख राज मे भारी ।
राज कह महाराज सुखी,
महाराज कह वह इन्द्र सुखारी ॥
इन्द्र कह ब्रह्म देव सुखी,
ब्रह्मा कहे सुख विष्णु को भारी ।
जिस पर सत पुकारि कह,
बिन आत्म ज्ञान के सभी दुखारी ॥

(३) ईश अंश निज मान ले

॥ श्रुति वचन ॥

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्त ग्रन्थ कोटिभि ।
ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर ॥

जो बातें हजारो ग्रन्थो मे कही गई है, अर्थात् जो वेद वेदान्तर, उपनिषद पुराण तथा शास्त्रो ने नाना प्रकार से वर्णन किया है वही यहा केवल आधे श्लोक मे हो कही है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है यह जीव है वही ब्रह्म है न कि कोई दूसरा। परन्तु जैसे रात्रि मे रस्सी पडी हो तो उसमे सर्प का भ्रम हो जाता है उसी प्रकार जब तक अविद्यारूपी अधकार बना रहता है तब तक इसी ब्रह्म मे जीव का भ्रम रहता है। परन्तु जब अविद्या का नाश होकर विद्या (ज्ञान) का प्रकाश होता है तब इस जीवन का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है और जिस प्रकार सुमुद्र की लहरें समुद्र से भिन्न नहीं होती

हैं परन्तु जब तक प्रवाह का वेग रहता है तब तक लहरें समुद्र से प्रथक नजर आती हैं परन्तु प्रवाह के हट जाने पर जब समुद्र शान्त और निर्विकार हो जाता है तब लहरें और समुद्र दो अलग अलग रूपो मे दिखाई न देकर केवल एक (अद्वैत) रूप ही हो जाता है जो कि उसका वास्तविक स्वरूप है । उसी प्रकार जब अविद्यारूपी प्रवाह हट जाता है तो यह जीव भी अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म पद को प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार अग्नि की चिनगारिया भी अग्नि मे प्रथक कोई स्वरूप नहीं रखती और स्वर्ण से बने हुए आभूषण भी अन्त मे गलने पर केवल स्वर्ण रूप ही रह जाते हैं । ऐसे ससार मे अनेको दृष्टान्त देखने में आते हैं जो यही सिद्ध करते हैं कि जीव और ईश्वर (ब्रह्म) में कोई भेद नहीं है । तुलसीदासजी का भी कथन है कि—

ईश्वर अश जीव अविनाशी ।

चेतन अमल सहज सुख राशी ॥

यह ईश्वर विषय के लेख पहले विस्तार पूर्वक

लिखे गये हैं परन्तु पद नम्बर ३ के अनुसार यहा लिखने की आवश्यकता पडी।

(४ व ५) निष्काम कर्म सेवा

निष्काम कर्म सेवा जगत के सब चराचर जीव आत्म स्वरूप हैं इसलिये प्राणी मात्र की सेवा करनी चाहिये। जिसके पास जो कुछ साधन होय—जैसे धन वालो को धन से पुरुषार्थी को पुरुषार्थ से तथा मन वाणी शरीर से अभिमान छोड कर सेवा करनी चाहिये। सेवा कर के किसी पर अहसान नहीं करना चाहिये। हरेक मनुष्य को यह नहीं समझना चाहिये कि मेरे मे सेवा करने की शक्ति नहीं है क्योंकि जब जड, वृक्ष और पशु भी अपने शरीर के द्वारा जगत को सेवा कर रहे हैं तब मनुष्य अगर सेवा नहीं कर सके तो इससे बढ कर अधर्मी कौन हो सकता है ? उनको जड वृक्षो से भी नीचा समझना चाहिये,

वृक्षो की लकडी, छाल और पत्तों से प्राणियों का उपकार होता रहता है। वृक्ष की छाया से प्राणियों को आराम मिलता है। वह प्राणी मात्र को आराम पहुँचाते हैं और खुद सर्दी गर्मी आदि को सह करके कष्ट उठाते हैं तथा पत्थर मारने वालो को भी फल दे कर उनका उपकार ही करते है। अपना जीवन प्राणियों की सेवा में ही बिताते हैं तथा गौवें घास खा कर दूध देती हैं, ऐसे ही मधु मक्खियें तथा रेशम के कीडों आदि का भी दुनिया मे बडा उपकार हो रहा है। इसी लिये समझदार मनुष्य को चाहिये कि अपने तन, मन और धन से प्राणियो की सेवा बिना किसी स्वार्थ के करनी चाहिये उसी को भगवान की सेवा कहते हैं।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई।
पर पीडा सम नहीं अधमाई॥

इसलिये मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है, जहा तक हो सके अपनी जिन्दगी प्राणी मात्र की सेवा में बितावे। वे मन मे यह भी निश्चय कर लेवें कि प्राणी मात्र भगवान का स्वरूप है और मैं सब का सेवक हूँ।

ऐसी पवित्र भावना से जगत की सेवा करता रहे। सेवा स्वार्थ रहित हो। सेवा का सच्चा भाव और सच्चे मन से सेवा करने मे पग पग पर आनन्द मिलता है। सेवा के बराबर दूसरा कोई भी धर्म नही है परन्तु जो लोग बदला लेने के लिये सेवा करते हैं वह बिलकुल सेवा नही वह तो एक स्वार्थ सिद्धि का साधन है। सेवा करके अपने मन मे भी अभिमान नहीं लाना चाहिये कि मैं दुनिया की सेवा कर रहा हूँ यथार्थ मे तो करी हुई सेवा किसी भी रूप मे प्रकट भी नहीं होनी चाहिये अगर प्रगट हो जाय तो मन मे अफसोस करना चाहिये।

चार वेद सब शास्त्रो मे बात लिखी है दोय।
सुख दिये सुख होत है दु ख दिये दु ख होय ॥
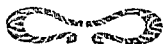
(६) क्षमा

क्षमा का हथियार जिसके हाथ में है, उसका कोई

शत्रु नहीं हो सकता । अगर शत्रु हो भी तो मित्र बन जाता है । जैसे घास फूस रहित पृथ्वी मे अग्नि पडी हुई आप ही आप शान्त हो जाती है । क्षमा का सब से अच्छा उदाहरण धरती माता है । धरती पर लोग मल मूत्र त्याग करते हैं थूकते हैं उसको हल फावडा कुदाला से काटते हैं, फाडते हैं परन्तु धरती माता सबको सहन कर लेती है, सहन ही नहीं उलटा सब का उपकार करती है और सब को अपनी छाती पर धारण किये हुए है तथा नाना प्रकार के अन्न और फलफूल देकर प्राणियो की रक्षा करती है। बस इस दृष्टान्त के अनुसार मनुष्य मे गुण होना चाहिये।

क्षमा मनुष्य का धम अवश्य है परन्तु दुष्ट तथा पापी पर क्षमा भी काम की नहीं जो अनाथो को दुख देता हो । उस पर क्षमा करना महा पाप है। यह शिक्षा योगीराज श्री कृष्ण ने अर्जुन को दी थी।

क्षमा धारण करना हम सब का पहला काम है। क्षमा का गुण मात्र मनुष्यों में होना चाहिये । क्षमा

धर्म का एक बडा अग है। अगर मनुष्य मे क्षमा न होगी तो ससार अशान्तिमय हो जायगा। एक दूसरे का शत्रु वन जायगा। इसलिये मित्रता का भाव बढाने के वास्ते क्षमा की बडी भारी जरूरत है।

धीरा सो गभीरा उतावला सो बावला ॥

धीरज मोटी बात है। धीरज भी क्षमा का वाचिक शब्द है। आपत्ति के समय भी मन को स्थिर रखता है वही पुरुष अपने जीवन मे सफलता प्राप्त कर सकता है।

क्षमा खडग जिन कर गहा रहा न दुशमन कोय।
बिन ईधन के अग्नि ज्यू आप हि शीतल होय ॥

(७) दया

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान।
दया न छोडो सूरमा जब तक घट में प्राण ॥

दया ही सब का परम धर्म है। इस दया शब्द का अर्थ यह है कि मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देना चाहिये। इस लिये सारे ससार के धर्म इस दया के अन्दर आ जाते हैं।

दया निशरनी स्वर्ग की पाप छुरी की धार।
दया न छोड़ो जन्म भर दया धर्म का सार॥
काशी और द्वारका बदरी गग केदार।
बिना दया सब झूठ हैं ज्ञानी करो विचार॥
दया धर्म हृदय बसे बोले अमृत बैन।
वे ही ऊचा जानिये जिसके नीचे नैन॥
ज्ञानी जन हेला करे सुणो सकल ससार।
दया बिना सब जायेंगे सीधे जम के द्वार॥
काहे को दु ख दीजिये साईं सब घट माय।
सब में एक ही आत्मा दूजो कोई नाहि॥
दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी
मूवे पशु की सार हो

गरीब को न सताइये गरीब रो देगा।
तो जड़ा मूल से खो देगा ॥
अहिंसा परमो धर्म अहिंसा परमो तप।
अहिंसा परमो दान अहिंसा परमो जप ॥

(६) तप

तप और भक्ति यह दोनो शब्द अलग अलग भले ही हो परन्तु इन दोनो के साधन मे अन्तर नहीं है जिन बातो की आवश्यकता भक्ति मे है उन्हीं बातो की जरूरत तपश्चर्या में है। कई लोग लम्बे उपवासे को तपस्या कहते हैं परन्तु अन्न का त्याग ही तपस्या नहीं है। कहीं कहीं आहार न मिलने के कारण लाखो मनुष्य मर गये तो वे तपस्वी मरना नहीं कहा जाता। इसलिये उपवास के समय मन और अपनी

दया ही सब का परम धर्म है। इस दया शब्द का अर्थ यह है कि मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देना चाहिये। इस लिये सारे ससार के धर्म इस दया के अन्दर आ जाते हैं।

दया निशरनी स्वर्ग की पाप छुरी की धार।
दया न छोडो जन्म भर दया धर्म का सार॥
काशी और द्वारका बदरी गग केदार।
बिना दया सब झूठ हैं ज्ञानी करो विचार॥
दया धर्म हृदय बसे बोले अमृत बैन।
वे ही ऊचा जानिये जिसके नीचे नैन॥
ज्ञानी जन हेला करे सुणो सकल ससार।
दया बिना सब जायेंगे सीधे जम के द्वार॥
काहे को दुख दीजिये साईं सब घट माय।
सब मे एक ही आत्मा दूजी कोई नाहि॥
दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
मूये पशु की खाल से लोह भस्म हो जाय॥

गरीब को न सताइये गरीब रो देगा।
तो जडा मूल से खो देगा ॥
अहिंसा परमो धर्म अहिंसा परमो तप ।
अहिंसा परमो दान अहिंसा परमो जप ॥

(६) तप

तप और भक्ति यह दोनो शब्द अलग अलग भले हो हों परन्तु इन दोनो के साधन मे अन्तर नहीं है जिन बातो को आवश्यकता भक्ति मे है उन्हीं बातो की जरूरत तपश्चर्या में है। कई लोग लम्बे उपवास को तपस्या कहते हैं परन्तु अन्न का त्याग ही तपस्या नहीं है। कहीं कहीं आहार न मिलने के कारण लाखो मनुष्य मर गये तो वे तपस्वी मरना नहीं कहा जना। इसलिये उपवास के समय मन और अपनी

इन्द्रियों को वश मे रखे उसी को तपस्या कहते हैं अगर नहीं तो हठ योग है । बस यही बात एकादशी आदि व्रतो मे समझनी चाहिये ।

भक्ति—कई तो दिन भर हाथ में माला रखते हैं और बातो का गपोडा मारते फिरते हैं, उसी को भक्त कहते हैं। कई पैरो मे घूघरा बाध कर मन्दिरो में नाचा करते हैं, उनको भक्त कहते हैं। कई सीताराम सीताराम करते फिरते हैं तथा श्रीकृष्ण शरण मम करते रहते हैं, उनको भ कहते हैं। परन्तु भगवान श्रीकृष्ण का वचन है कि—

> अपहाय निज कर्म कृष्ण कृष्णेति यादिन ।
> ते हरे द्वेषिण पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरे ॥

भावार्थ—भगवान ने कहा है कि अपना निज क कर्त्तव्य है शुभ कर्म करना सो यह नहीं कर के केवल कृष्ण कृष्ण करने वाला हमारा द्वेषी है, वह भक्त नहीं ।

माला तो मन की भरी और काठ का भारा ।
माला मे ही गुण हुवे तो क्यों वेचे मनिहारा ॥
माला तो कर मे फिरे जीभ फिरे मुख माँहि ।
मनवा तो चहुँ दिश फिरे यह तो सुमरण नाँहि ॥
माला फेरत जग मुग्ध पाया न मन का फेर ।
करका मणका छोड कर मन का मणका फेर ॥
राम अर्थ जान्यो नहीं माला जाणी सार ।
वह नर अध विश्वास में डूवे काली धार ॥
माला फेरत थक मिटे राम मिला नहीं कोय ।
मन में गू डी कपट की राम भजे क्या होय ॥
माला फेरत दिन गये पण्डित भया न कोय ।
आधा अक्षर प्रेम का पढे तो पडित होय ॥

तव शंका होती है कि भक्त किस को कहना
चाहिये और तपस्या कैसी होनी चाहिये । जिस पर
शास्त्रो का प्रमाण है कि इन दोनो विषयों में दैवी
गुण होना चाहिये । दैवी सम्प्रदाय का वर्णन गीता
में खूब खुलासा लिखा हुआ है ।

इन्द्रियो को वश मे रखे उसी को तपस्या कहते हैं अगर नहीं तो हठ योग है। बस यही बात एकादशी आदि व्रतो में समझनी चाहिये।

भक्ति—कई तो दिन भर हाथ में माला रखते हैं और वातो का गपोडा मारते फिरते हैं, उसी को भक्त कहते हैं। कई पैरो में घुघरा बाध कर मन्दिरो में नाचा करते हैं, उनको भक्त कहते हैं। कई सीताराम सीताराम् करते फिरते हैं तथा श्रीकृष्ण शरण मम करते रहते हैं, उनको भ कहते हैं। परन्तु भगवान श्रीकृष्ण का वचन है कि—

> अपहाय निज कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिन।
> ते हरे द्वेषिण पापा धर्मार्थ जन्म यद्धरे॥

भावार्थ—भगवान ने कहा है कि अपना निज का कर्त्तव्य है शुभ कर्म करना सो यह नहीं कर के केवल कृष्ण कृष्ण करने वाला हमारा द्वेषी है, वह भक्त नहीं।

(१०) मोह

जिस जिस मे नर ममता करता,
दुःख उसी से पाता है।
फल होता है उसका यही,
अन्त नरक में जाता है॥

जिस प्राणी से स्नेह है उसी का मोह है। इसलिये ससारी प्राणियो से मोह लग गया तो परभव तक दुःख है—जैसे जड भरत को हिरण की देह धारण करनी पडी थी।

इस ससार में आजतक बडे-बडे अनेको महापुरुष हो गये हैं। परन्तु उनमें से एक भी जीवित नहीं रहा ... जीवित रह सकता है एक न
सब ... है। प्राणी मात्र अकेला
है ... माता, पिता,
स्त्री, ... ज्यादा से ज्यादा
से सम्बन्ध
स्नेही सज्जन

सत्यं नास्ति भय क्वचित ।

इस न्याय से सत्य को किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता ।

मद (अहंकार)— जिसको अपना घमण्ड है यह बहुत बुरा है । घमण्ड से रावण और कौरवों का सत्यानाश हुआ । प्रकृति के राज में आज तक घमण्ड किसी का चला ही नहीं और न अब घमण्ड किसी का चल सकेगा । घमण्ड से जरासिंध, शिशुपाल और कंस आदि राजाओं के मुकुट धूल मे मिल गये थे ।

मैं मैं बडी बलाय है, त्याग सके तो त्याग ।
करया कराया जालसी, जैसे वन की आग ॥
भरिया सो छलके नहीं, छलके सो आधा ।
उछलते ही परखिया, दोल अरु लाधा ॥

(१०) मोह

जिस जिस मे नर ममता करता,
दुख उसी से पाता है।
फल होता है उसका यही,
अन्त नरक में जाता है ॥

जिस प्राणी से स्नेह है उसी का मोह है। इसलिये ससारी प्राणियो से मोह लग गया तो परभव तक दुख हैं--जैसे जड भरत को हिरण की देह धारण करनी पडी थी।

इस ससार में आजतक बडे-बडे अनेको महापुरुष हो गये हैं। परन्तु उनमे से एक भी जीवित नहीं रहा और न अब सदा कोई जीवित रह सकता है एक न एक दिन सब को मरजाना है। प्राणी मात्र अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है। माता, पिता, भाई, बन्धु, स्त्री, पुत्र आदि का नाता ज्यादा से ज्यादा इस जीवन तक ही रहता हैं, फिर तो सब से सम्बन्ध टूट ही जाता है। प्राण जाने के बाद यह स्नेही सज्जन

थोडे दिन का सभी पाहुना,
नहीं किसी का घर है ॥
घर धन अपना मान करके,
कुछ दिन जी बहलाना है ।
आखिर को यह सभी छोड कर,
बेवस हो उठ जाना है ॥
बदा निनडली निवार,
यह जग झूठो रे ससार ।

(११) क्रोध

क्रोध सदा निर्बुद्धि मनुष्य को ही विशेष आता है । जो मनुष्य गंभीर और बुद्धिमान होता है उसको क्रोध जल्दी नहीं आता । मनुस्य क्रोध में आकर कई ऐसे काम कर बैठता है कि . सके लिए उसको

अपनी सारी उमर पछताना पडता है, क्योकि उस समय उसको भले और बुरे शब्द की पहचान नहीं रहती है और अपनी बुद्धि को खो बैठता है। क्रोध के आदि में मूर्खता और अंत मे पश्चाताप होता है। क्रोध आ जाने पर मनुष्य को चुप हो जाना चाहिये, क्योंकि न जाने उस समय कैसा शब्द निकल पडे।

क्रोध का मन और शरीर दोनो पर असर पडता है और वह जीवन का सत्यानाश कर देता है। क्रोध शराब की तरह मनुष्य को अज्ञान बना देता है। वह जिसके पीछे पडता है उसको घुला घुला कर मार देता है। जिसके शरीर मे क्रोधाग्नि जलती रहती है वह तो विना चिता के ही जल जाता है। क्रोधी का शरीर शुष्क हो जाता है जठराग्नि मंद पड जाती है और अनेक व्याधियें लार पड जाती हैं। क्रोधी मनुष्य अपने को पूरा समझदार समझता है और दूसरो को बेवकूफ समझता है कि जो बात मैंने सोची है वही ठीक है बाकी सब गलत है।

करोड कर्म लागा रहे एक क्रोध के लार।
कर्या कराया सब गया जब आया अहकार ॥
क्रोध महा चंडाल सदा यह छोले छाती।
क्रोध महा चंडाल जिससे रहे अखियां राती ॥
क्रोध महा चंडाल गिणे नहीं आछो भूंडो।
क्रोध महा चंडाल पडे नरक में ऊंडो ॥
क्रोध महा चंडाल घर की सम्पत्ति खोवे।
क्रोध महा चंडाल निज दुर्गति वोहे ॥
क्रोध महा चंडाल गिणे नहीं मित्र अरु भाई।
क्रोध महा चंडाल दोनो गति देत डुबाई ॥

क्रोध को शान्त करने का उपाय यह है कि क्रोध आने पर कुछ देर चुपचाप बैठ जाय और मन ही मन विचार करने लगे कि जरासी बात पर मुझे क्रोध आ जाता है तो मैं कुछ भी बुद्धिमान नहीं हूँ। ऐसा विचार करता हुआ मन को फटकार कर उस जगह से उठ कर दूसरी जगह चला जाय और ठण्डा पानी पीकर ठन्डे ही पानी से हाथ मुंह धो लेवे जिससे क्रोध के द्वारा आई हुई गरमी शान्त हो जाती है, फिर मन को

कोई अच्छे काम पर लगा देना चाहिये। तब क्रोध अवश्य शान्त हो जाता है। क्रोध का दमन किये बिना, मनुष्य न तो स्वय सुखी हो सकता है और न उसके द्वारा समाज या देश का ही उपकार हो सकता है।

जो स्वय रात दिन जलता रहता है वह दूसरो का क्या भला कर सकता है। इसलिये क्रोध को शान्त करने की बातें अवश्य सीखने की मनुष्य मात्र को जरूरत है।

(१२) तृष्णा का नाम

आशा, तृष्णा, कामना चाहे कहो कोई काम।
इच्छा कहो या वासना यह सब इसके नाम॥

तृष्णा दुःख का हेतु है। तृष्णा काम (भोग) की तृष्णा, धन की तृष्णा, इन्द्रियो के जितने प्रिय

असली धन सतोष है नकली धन कुछ और।
असली धन पाये बिना मिटे न मन की दौड़॥

तृष्णा के स्वभाव

नख बहुत फटा देखे कान कन फटा देखे,
छार लाये तन में।
कई गुणवान देखे सदा के धनवान देखे,
वेद के विद्वान् देखे फूल रहे धन में॥
आदि अन्त सुखी देखे जन्म ही के दु:खी देखे।
घर बार को छोड कर के जा बसे बन मे॥
सूर और वीर देखे सदा से अमीर देखे।
ऐसे नहीं देखे जाको तृष्णा नहीं मन में॥
तू हि भ्रमाय प्रदेश पठावत,
डूब ही जाय समुद्र जहाझा।
तू हि भ्रमाय पहाड़ चढ़ावत,
जाय वृथा मर जाय अकाजा॥

तू सब लोक भ्रमाय भली विधि,
भाड किये सब रक हू राजा ।
हू अब तोय पुकार कहूं सुण,
हे तृष्णा तुझ नेक न लाजा ॥

दु खो से छूटने के लिये तृष्णा छोड देनी चाहिये । मरने पर्यंत मनुष्य को अनेक बातो की तृष्णा बनी रहती है और वह घर का मालिक बना रहता है परन्तु जहा मौत आई कि सारे के सारे मनसूबे ज्यूं के त्यू रह जाते हैं । उसका घर मे कोई भी हक नहीं रहता है । अपनी मानी हुई सब वस्तुओं को विवश ही छोड देनी पडती है । तृष्णा यानी वासना—

वासना और मन

अब यह लिंगदेह कि जो स्थूलदेहका बीजरूप है, इसीको वासनादेह भी कहते हैं, किसलिये कि स्थूल-शरीर गिरते समय (पतन होते समय) जो मनकी

होने की स्वतन्त्र कोई शक्ति नहीं, ऐसे ही मनको जानना चाहिये। मन भी जड है, वह अपनेआप कुछ नहीं कर सकता। परन्तु वह चेतन के सम्बन्ध से नानाप्रकार के विचार—सकल्प विकल्प करता रहता है, और देखे हुए, सुनेहुए कई स्थलो-स्थानो में गति करता है।

मनकूं जमाने के लिये दृष्टान्त है कि जैसे कोई कुत्ते को तू तू करके पुकारता हो तो वह शब्द सुनकर भी मनुष्य उसपर ध्यान नहीं देता वह समझता है कि यह तो कुत्ते को बुला रहा है परन्तु मैं तो मनुष्य हूँ, इसी प्रकार विवेकी पुरुष को भी चाहिये कि मैं पुरुष नहीं हूं स्त्री नहीं हू और पाच भौतिक देह भी नहीं हूँ किन्तु अविनाशी परब्रह्म स्वरूप हूँ ससार मे जो हल्ला-गुल्ला मच रहा है यह मैं क्यों सुनूं। इसी प्रकार नित्य प्रति मनन करके मन को वश में करना चाहिये। यह काम नित्य के अभ्यास से सिद्ध होता है, नियम पूर्वक किसी कार्य को करते रहना इसी का नाम अभ्यास है। अभ्यास करने में भी युक्ति चाहिये। प्रथम

थोडा-थोडा करना फिर उससे कुछ अधिक तब और अधिक इस प्रकार क्रमश बढाते जाना। किसी ऊचे पर्वत पर चढना हो तो एक दम फलाग मारकर चढा नहीं जाता किन्तु धीरे धीरे एक एक कदम चढकर ठेठ शिखर पर पहुच सकता है। ऐसे ही इस मन को ज्ञानी पुरुष नित्य के अभ्यास द्वारा अपने वश कर ही लेते हैं जैसे बादलो (मेघो) को लाने वाला वायु है और बखेरने वाला भी वायु है वैसे ही ससार रूपी बन्धन को काटने वाला भी मन ही है और बन्धन में रखने वाला भी मन ही है।

मनके हारे हार है और मन के जीते जीत।
हरष शोक मनके तणा मन ही की प्रतीत ॥
मन के उलझे उलझिया देखा सब ससार।
मनके सुलझे सुलझिया कहते सत पुकार ॥
मनकी गति है अटपटी चटपट लखै न कोय।
जे मन की खटपट मिटे तो चटपट मुक्ति होय ॥
ज्ञानी बनकर क्या किया मन जो रहा कपूत।
जिसने मन वश न किया तो घट मे नाचे भूत ॥

चद को ध्यान चकोर लगो
चवान को ध्यान दिने सट की ।
मैं क्या हू यह ध्यान नहीं
वो उन पर जाय पडो पटकी ।

यह "थोडे शब्दो में" धर्म के १३ विष समाप्त हुए ।

अब आरोग्यता के विषय मे और कुछ रोचक शब्द लिखे जा रहे हैं।

भूख बिना कुछ खावो मत
जूवे खेलन जावो मत
दुर्बल को धमकावो मत
जब्बरसे फँस जावो मत
उभड रस्ते जावो मत
सडको पर सोजावो मत
खाली वक्त गमावो मत
बिना बुलाये जावो मत
पढणे मे शर्मावो मत
धन पाके गर्मावो मत
जादा भार उठावो मत
हर से हेत हटावो मत
बासी कूसी खाश्रो मत
नितही माल उडावो मत

सबको नाट दिखाणा नहिं
देखा देखी खाणा नहिं

देखा देखी खाने के विषय मे कहावत है कि—

किसी को बैंगण बायला, किसी को बैंगण पच्च।
किसी को लावे आफरा किसी को चाढे मच्च॥

सूक्ष्म पथ्य

शरीर को सहन हो सके ऐसे जल से न्हाणा और बिना परिश्रम पच जाय जिससे भी कम खाणा।

भोजन तैयार का उका बजते ही भोजन मत करो। भोजन तब ही करो कि जब क्षुधा का डंका बजने लगे। भोजन शुद्ध हवादार स्थान में ठीक सीधा बैठ कर ऊंचे पाटे पर थाली रख कर के करें। जिससे पेट पर दबाव न पड़े। भोजन ऐसा चबायें कि मुंह में पहुंचा हुवा ग्रास जीभ की अमी के साथ मिल

कर दुगुना हो जाय। भोजन मे मिर्च और खटाई ज्यादा न हो और अपनी रुचि से भी भोजन कम करना चाहिये। जीभ के तुच्छ स्वाद के कारण बहुत से प्राणी बीमार पडते हैं। कहते हैं कि—तलवार और पिस्तौल की अपेक्षा जिव्हा इन्द्रिय ने बहुत प्राणियो को मारा हे। सच भी है कि बहुत सी बीमारियें मुह के रस्ते से ही पेट मे जाती हैं और प्राय बीमारी भी पेट से ही पैदा होती हैं, भोजन की दृष्टि से पेट के साथ किये हुए अत्याचार हम लोगो की बीमारी का खास कारण होते हैं। भोजन पेट की सलाह लेकर ही करना चाहिये कि पेट क्या कह रहा है? ससार मे वही पूर्ण आयु पाता है जो पेट की तरफ ध्यान रख कर भोजन करता है। पूर्ण आयु इस युग मे एक-सौ वर्ष की है और इस आयु से कम उमर मे जाने वालो की शास्त्रकारो ने अकाल मृत्यु मानी है। भोजन करने में और बोलने में जिसकी जीभ वश में नहीं रहती

सेर चून के काज राज प्रजा को डंडे।
सेर चून के काज फौज के सामा मडे॥
सेर चून के काज नाच कर गाना गावे।
सेर चून के काज सभी नर खोटा खावे॥
सेर चून के काज देश परदेशा जावे।
सेर चून के काज श्रापणी जान गमावे॥
साची है यह बात नहीं है फेर की।
ज्ञान ध्यान जब जमे पडे पेट मे सेर की॥

भोजन में प्रोटीन श्रौर विटामिन की बडी श्राव-श्यकता है, परन्तु यह हमारे खाने की सामग्री में मौजूद रहता है! जैसे दाल, भोजन में सब से ऊंचा पदार्थ है। हमारे शरीर मे खून विशेष करके दाल से ही बनता है। इसलिये रोटी श्रौर चावल के साथ दाल का होना अत्यन्त जरूरी है। जिनकी पाचन शक्ति कमजोर है उनको मसूर की दाल खानी चाहिये। मसूर की दाल सब दालों से हलकी है।

हम लोगों की खुराक तीन प्रकार की है अन्न, जल

और वायु । इन मे सब से उत्तम खुराक हवा है । क्योंकि अन्न के बिना तो मनुष्य जल पीकर मास डेढ मास तक रह सकता है और जल के विना भी कुछ समय तक रह सकता है । परन्तु हवा के बिना तो प्राणी पाच मिनट नहीं जी सकता । इसलिये यह हवा हीरा और पन्ना आदि रत्नो से भी महगी है । परन्तु इस अमूल्य दवा का उपयोग करना हम लोग बिलकुल नहीं जानते । हम सब हवा के समुद्र में रहते है, जैसे मछली जल मे रहती हे और विना जल के प्राण दे देती है । बस इसी प्रकार इस हवा रुपी समुद्र के विना हम लोग जीवित नहीं रह सकते । हम सब को ऐसे स्थान मे रहना चाहिये कि जहा सूर्य का पूर्ण प्रकाश और साफ तथा खुली हवा हर समय मिल सके । मनुष्य का स्थूल शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाचो भूतो के सयोग से बना हुआ है । परन्तु पृथ्वी, जल, अग्नि और आकाश तो शरीर मे प्रत्यक्ष नहीं

दीखते हैं और वायु तो नाक आदि मे प्रत्यक्ष दीख रही है।

जब तक देह में यह पवन चलती रहती है तभी तक मनुष्य जीवित है और पवन के चले जाने से मुरदा है। इसलिये मनुष्य को सूर्य का प्रकाश और शुद्ध तथा खुली हवा की बडी भारी आवश्यकता है। यह शुद्ध प्राण वायु श्वास द्वारा हमारे अन्दर कोठे में जा कर गदी हवा को साथ लाकर बाहिर फेंक देती है। इसी से हमारी तन्दुरस्ती रहती है। अगर शुद्ध हवा अन्दर प्रवेश न हो तो अन्दर की गदगी के कारण शरीर बच भी नहीं सकता।

हाड अरु मास को है कठपुतल,
आतड में मल को नहीं ठेठों।
कठ के भीतर कफ भरयो अरु,
आख में गीड़ नाक में सेडो॥
माता के पेट में रह्यो अधोमुख,
बाहिर आने को वेउव एढो॥

सब ही द्वार मलीन रहे,

तब एक तो दीसम ब्राह्मण डेढो ॥

अपनी याद को क्यों न विचारत,

काहे को तू नर चालत टेढो।

दीन अनाथो की सेवा किये बिन,

नारी है भेडी अरु पुरुष भेडो ॥

हाडको पिंजर चाम ढक्यो अरु,

माय भर्यो मल मुत्र विकारा।

थूक व लाल पड़े मुख से अरु,

राध बहे दोनो कानो के द्वारा ॥

हड्डी के दांतो से खाय सभी कुछ,

जिह्वा के ऊपर मैल अपारा।

सब ही द्वार मलीन रहे अरु,

आखर को यह काल का चारा ॥

चाहे कोई नर पोखर न्हावे अरु,

चाहे न्हावे नित गंगा की धारा।

अन्दर आत्म शुद्ध किये बिन,

बाहिर न्हाये से नहीं सुधारा ॥

किसी प्रकार की गंदगी से आच्छादित हो जाते हैं तो पसीना निकलने का मार्ग बन्द हो जाता है और वे अनावश्यक पदार्थ जो पसीने के साथ निकल जाते थे निकलने नहीं पाते इस लिए त्वचा को स्वच्छ रखने की बड़ी भारी आवश्यकता है।

इसलिए हमारे शास्त्रकारों ने स्नान को धर्म के साथ जोड़ दिया है। स्नान सवेरे और शाम दोनों वक्त करने की आवश्यकता है, परन्तु कम से कम एक दफे तो जरूर ही करना चाहिए और आरोग्यता की इच्छा रखने वाले पुरुषों को नशा किसी भी प्रकार का नहीं करना चाहिए ---

परन्तु देखने में आता है कि,

मुंह में तम्बाकू की बीड़ी,
और हाथ में चाय की प्याली।
तो कहो कैसे रहे,
मर्दों के गालों पर लाली॥

जगत मे यह नशेबाज दु ख पावें दिन रात।
मिट्टी मे मिलाय देत उत्तम शरीर को ॥

कुत्ता भी नहीं खाते जिसको चाय कर खाते सब।
नशे वाली चीजें फूक देती हे शरीर को ॥
गाजा, चडस, चाय, बीडी अफीम को आदि लेके।
सभी हानिकारक हैं यह गरीब अरु अमीर को ॥
सदा ही दुख देवे और द्रव्य की भी हानि होत।
आसोपा फटकार देत ऐसे नशेगीर को ॥

अपनी शक्ति विचार के कारज करिये दौड।
उतना पैर पसारिये जितनी लम्बी सौड ॥

मनुष्य जन्म से ही महापुरुष नही हो जाता हैं। कितने ही अवसरो पर उनको अन्धकार में भटकरणा पडता है फिर भी अपने को ही निश्चय करना पडता है कि, हमे किधर जाना है ? इस विषय में भूल न करना ही महापुरुषो की बुद्धिमानी है। भारत मे जितने भी अवतारी और महापुरुष हुए

अथ मनन रत्नम्

दोहा
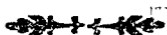
मनन इसी को कहते हैं,
मनसे करे विचार ।
वैठि इकान्तिक देश में,
सोधे सार असार ॥
युक्ति वाधक भेद को,
अरु पुनि कहे अभेद ।
तिन्हीं करिके दूर होय,
असम्भावना खेद ॥

अर्थ यह है कि — पूर्व गुरुमुख से महावाक्यों का जो श्रवण किया था, उस को एकान्त स्थान में बैठ के, विचार करके, सार और असार का शोधन करने को 'मनन' कहते हैं।

शिष्य कहता है—"हे भगवन्! आपने जो सार-असार का शोधन कहा, सो सार क्या है? और असार क्या है? और इनका शोधन किस प्रकार होता है? सो आप कृपा कर कहिये" इस पर से गुरु कहते हैं—

हे शिष्य! पूर्व "तत्त्वमसि" "अहंब्रह्मास्मि" इत्यादि जिन महावाक्यों का श्रवण कहा है, उन सर्व वाक्यों के तीन-तीन पद होते हैं। 'अहं' पद जीवन का वाचक होता है 'ब्रह्म' पद ईश्वर का वाचक होता है, और 'अस्मि' पद चेतनमात्र का वाचक होता है।

शुद्ध-सतोगुण वाली 'माया' में चेतन का जो आभास पड़ा है, उस को 'ईश्वर' कहते हैं, और मलिन-सतोगुण वाली जो 'अविद्या' है, उस में चेतन का जो आभास है, उसको 'जीव' कहते हैं। इस प्रकार

अथ मनन रत्नम्

दोहा
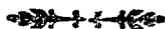
मनन इसी को कहते हैं,
मनसे करे विचार।
बैठि इकान्तिक देश में,
सोधे सार असार॥
युक्ति बाधक भेद को,
अरु पुनि कहे अभेद।
तिन्हीं करिके दूर होय,
असम्भावना खेद॥

अर्थ यह है कि — पूर्व गुरुमुख से महावाक्यों का जो श्रवण किया था, उस को एकान्त स्थान में बैठ के, विचार करके, सार और असार का शोधन करने को 'मनन' कहते हैं ।

शिष्य कहता है—"हे भगवन् ! आपने जो सार असार का शोधन कहा, सो सार क्या है ? और असार क्या है ? और इनका शोधन किस प्रकार होता है ? सो आप कृपा कर कहिये" इस परसे गुरु कहते हैं—

हे शिष्य ! पूर्व "तत्त्वमसि" "अहंब्रह्मास्मि" इत्यादि जिन महावाक्यो का श्रवण कहा है, उन सर्व वाक्यो के तीन-तीन पद होते हैं । 'अहं' पद जीवन का वाचक होता है 'ब्रह्म' पद ईश्वर का वाचक होता है, और 'अस्मद्' पद चेतनमात्र का वाचक होता है ।

शुद्ध--सतोगुण वाली 'माया' मे चेतन का जो आभास पड़ा है, उस को 'ईश्वर' कहते हैं, और मलिन-सतोगुण वाली जो 'अविद्या' है, उस में चेतन का जो आभास है, उसको 'जीव' कहते हैं । इस प्रकार

अब दूसरे दोहे का अर्थ कहते हैं— प्रमेय कहिए 'जीव-ब्रह्म का एकत्व' गत कहिये उसमें 'असंभावना' अर्थात— संशय, और सेद। अर्थात— दु:ख रूपी भेद की बाधक और अभेद की साधक जो युक्तियां हैं; उनसे 'प्रमेय-गत' असभावना को दूर करे। यदि, ऐसा कहें कि – प्रमेयगत असभावना क्या है? तो सुन— यह जो वेदान्त-शास्त्र के वचन जीव-ब्रह्म के 'भेद' को, अथवा 'अभेद' को कथन करते हैं? इसका नाम 'प्रमेयगत असभावना' है। इसकी निवृति के वास्ते भेद के बाधक, और अभेद के साधक युक्ति पूर्वक महावाक्यों के अर्थ का बार-बार चिन्तवन करना चाहिए, इसी को मनन कहते हैं।

अपने चित्त मे इस प्रकार विचार करके कि— 'वास्तव में द्वैत है नहीं, क्योंकि – यदि परमार्थ से द्वैत हो तो उसकी निवृति नहीं होनी चाहिए, कहते है कि -- परमार्थ ने एक चेतन सत्स्वरूप, त्रिकालाबाध है। जो वस्तु परमार्थ से सत् हो उसकी तीन काल में निवृति होती नहीं है, और द्वैत की तो अद्वैत ज्ञान से

निवृति हो जाती है। इससे 'द्वैत माया-मात्र है, सो 'माया' और उसका कार्य – 'प्रपच' मिथ्या होने से मुक्त चैतन्य मे द्वैत कर सकता नही। जैसे— वास्तविक रज्जु मे सर्प है ही नहीं, तो फिर वह किसको काटेगा ? तैसे ही – वास्तविक माया का स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता है, इसी से माया को अचिंत्य शक्ति कहा है, जो युक्ति के आगे ठहर नहीं सकती।

वह युक्ति यह कि— (१) यदि माया को 'सत्य' कहे, तो भी ठीक नही, क्योंकि — सत्य वस्तु का नाश नही होता है, और माया का ज्ञान से नाश हो जाता है, इससे माया सत्य नहीं कही जाती। और (२) जो माया को 'असत्य' कहे, तो भी बात नहीं बनती, क्योंकि –माया और माया के कार्य की जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति तीनों काल में प्रतीत होती है, इसलिए असत्य भी नहीं कही जाती है।

(३) 'सत्य-असत्य' दोनों को मिला के कहे, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि — जब सत्य असत्य ही सभव

का वास्तव से भेद नहीं है; और भेद की नाई प्रतीति होती है, इसी को माया कहते हैं। और जो ऊपर की युक्तियां कही हैं, उनमे माया का स्वरूप नहीं बनता है, तो आत्मा से ब्रह्म जुदा कैसे होगा ? और जो आत्मा से ब्रह्म को जुदा कहो, तो आत्मा से जो भिन्न है सो सब अनात्मा ही कहा जाता है, इससे ब्रह्म भी आत्मा से जुदा होगा ? तो यह भी अनात्मा ही होगा।

'ब्रह्म' को 'अनात्मा' किसी वेद शास्त्र ने अंगीकार किया नहीं है, इसी से जाना जाता है कि-आत्मा से ब्रह्म जुदा नहीं है। और जो आत्मा को ब्रह्म से जुदा कहे, सो भी बने नहीं, क्योंकि-जिस देश में आत्मा है उसी देश में ब्रह्म नहीं होगा, और ब्रह्म को तो वेद ने 'सर्वव्यापी' कहा है, अतः-वेद से विरोध होगा। यह किसी भी आस्तिक जन को अंगीकार नहीं हो सकता, इससे आत्मा भी ब्रह्म से जुदा नहीं है।

ब्रह्म और आत्मा दोनो एक ही वस्तु के नाम हैं, जैसे 'वृक्ष' और 'तरु' दोनो पर्याय हैं। जैसे—एक है

आकाश के उपाधि भेद से चार नाम कहे है, तैसे ही उपाधि के भेद से चेतन के अनेक नाम कहे जाते हैं। जैसे घट उपाधि से घटाकाश कहते हैं और जल उपाधि से जलाकाश कहते हैं, बद्दल की उपाधि से मेघाकाश कहते हैं, और सर्व पदार्थो के अन्तर बाहर होने से महाकाश कहा जाता है। परन्तु-आकाश में कोई टुकडे नहीं हुवे हैं; वह तो एक ही है।

तैसे ही—कूट कहिये 'मिथ्या बुद्धि' और 'चिदा-भास' उन में जो निर्विकार चेतन है, वही कूटस्थ कहा जाता है। और बुद्धि तथा अज्ञान में चेतन के आभास को जीव कहते हैं। शुद्ध--सतो--गुणवाली माया में चेतन के आभास को ईश्वर कहा है, और सर्व पदार्थो के अन्तर और बाहर जो व्याप रहा है, उसको ब्रह्म कहते हैं। इस रीति से नामो का ही भेद है, वस्तु का भेद नहीं है। अर्थात् ब्रह्म से आत्मा जुदा नहीं हैं, आत्मा और ब्रह्म दोनों एक ही चेतन के नाम हैं, और ब्रह्म आत्मा का जो भेद जानते हैं, उनके लिये वेदो में 'भय' का कथन किया है, भेद दृष्टि वाले को पशु भी कहा है। इससे

निश्चय नहीं हो, तब तक चिंतन करना चाहिये, और जब दृढ़ निश्चय हो जावे, तब नहीं करना-यही उसकी अवधि है।

* इति श्री मनन रत्न समाप्तम् *

अथ निदिध्यासन रत्न

दोहा

निदिध्यासन ताको कहे,
जीभ हिले नहिं होठ।
विरती के प्रवाह में,
होय नहीं कोइ खोट॥
वृत्ति सजाती यों उठे,
अन्तः करण मझार।

जैसे पुम्बे से छुटे; टूटत नाहीं तार ॥

अर्थ यह है कि - पूर्व जो महावाक्यों के अनुसार जीव ब्रह्म के एकत्व का विवेचन किया, सो युक्ति पूर्वक चिंतन करने से जब दृढ हो गया है, तो फिर उसमें बाह्य इन्द्रियो के व्यापार की, और होठ हिलाने की कुछ जरूरत नहीं, अन्तर ही मे अंतःकरण से वृत्तियो के प्रवाह को चलावे, और खोट कहिये-विजातीय अनात्माकार वृत्ति नहीं होने दे। अर्थात्-अन्तःकरण में 'सजाती' कहिये-ब्रह्माकार वृत्तियो का अखंड प्रवाह ऐसा चले कि-जैसे रूई के तूलको खेंचने से तार बंध जाता है और टूटता नही, इसी प्रकार वृत्ति का प्रवाह होने को निदिध्यासन कहते है।

निदिध्यासन रूपी वृक्ष दृढ होने पर तत्काल ही फल देता है, जैसे वृक्ष के बोने मे कुछ देरी नही लगती है, किन्तु — प्रथम जमीन की सफाई करने मे ही देरी

दुःख रूप हैं; तिनको सुख-रूप जानना, और शरीर आदि अनात्म हैं, तिनको आत्मरूप समझना ये चार प्रकार के कार्य अविद्या के कारण जैसे उल्टे समझे जाते हैं, वैसे ही -- अविद्या यहां दृष्टान्त में शुद्ध सच्चिदानन्द, जन्म-मरण, तथा पुण्य पाप, सुख--दुःख से रहित, एक, परिपूर्ण ब्रह्म-स्वरूप ऐसा जो आत्मा है उसको असत्, जड, दुःख का भोगने वाला मानता है, इसी को विपरीत भावना कहते हैं जिसकी निवृत्ति निदिध्यासन से ही होती है। क्योंकि – वारम्बार 'ब्रह्माकार वृत्ति' के होने से 'जीव—भाव' दूर होकर 'ब्रह्म भावना' होने से अपने को 'ब्रह्म—रूप' ही करके जान सकता है, इससे जीव भाव दूर होता है। इस प्रकार विपरीत भावना की निवृत्ति निदिध्यासन का फल है। जब तक 'जीव—ब्रह्म' की एकता का दृढ़ निश्चय नहीं हो, तब तक निदिध्यासन करे, और जब दृढ़ निश्चय हो जावे, तब वृत्ति को परि-श्रमा नहीं करे, यही इसकी अवधि है।

॥ इति श्री निदिध्यासनरत्न समाप्तम् ॥

अथ ज्ञान रत्न

कवित्त

वेदरूप उदधि में ज्ञान रत्न सुधा सम,
करके यतन ताको मथि के निकालिये ।
गुरुदेव विष्णु है युक्ति की नेति करि,
वार वार को अभ्यास ही मथन करि
पालिये ॥ जीव देव अधिकारी निरबल
होय रहा, प्याय ज्ञान सुधा असुर
अहंकार गालिये । कीनी है जुगत भयो
विष्णु समो गुप्त सुधा, सुरों को पिलाय
कर असुरों की जालिये ॥१॥

अर्थ यह है कि-- एक काल मे देवता दैत्यो से
निर्बल हो गये, तब हार मानकर के विष्णु भगवान्

चला। ये बकरियां भय की मारी भगने लगीं, और उनके साथ वह शेर भी भगा।

तब वन के शेर ने कहा—"अरे मूर्ख! तू कैसा शेर है? बकरियों के संग में भगा फिरता है"। तब वह बोला कि—"मै शेर कैसे हू? मैं तो बोकड़ा हूं"। यह सुनकर वह वन का शेर कहने लगा "अरे मूर्ख! तू कुछ विचार के देख, जैसे शेर हम हैं, तैसाही शेर तू भी है, इन बकररियों में काहे को फिरता है? तू देख तो सही,—जैसा हमारा स्वरूप है, तैसा ही तेरा स्वरूप है"। तब उन बकरियों में रहने वाले शेर ने उस वन के शेर को तरफ देखा, और फिर अपने शरीर की तरफ देखा, तो जैसा रंग रूप उसका था, तैसाही अपने को भी देखा। तब उसके कुछ संस्कार फुर आये, और उस वन के शेर को दहाड़ लगाई और जिन कर्मों के संयोग से शेर का शरीर रचा था, वे भी फुर आये। तब तो वह कूदने लगा और अपने को शेर रूप जानने लगा और उन बकरियों को मार मार के खाने लगा।

इस सम्बन्ध में दृष्टात यह है कि—यह 'चेतन' आत्मा ही एक 'शेर' है, जिसे 'मन रूप ग्वालिये' ने शरीर तथा इन्द्रिया रूपी वकरियो के साथ मिला दिया है। यह चेतन आत्मा शरीर व इन्द्रियो मे मिलकर उनके जो धर्म हैं, उन्हे वृथा ही अगीकार करने लगा। अर्थात्—"स्थूलोह, कृशोह, वधिरोहम्" ऐसा अहकार करके अपने को शरीर मानने लगा और इस प्रकार शरीर व इद्रियादि के धर्मों को अपने जानने लगा। तब नाना प्रकार के जीवत्व-धर्मों का अपने मे आरोपण करके नाना प्रकार के दु खो को प्राप्त हुआ। फिर किसी पुण्य कर्म के प्रभाव से वन के शेर के नाई जो-विचारवान् महात्मा पुरुष हैं, उनसे मिलाप होने पर, जब वे वन के शेर की नाई उसे समझाते हैं कि-

'अरे ! तू तो शुद्ध, सच्चिदानन्द, ब्रह्म--स्वरूप है, फिर अपने में शरीर इद्रियादि के धर्मों को क्यो आरोपण करता है ? तू तो उत्पति -- नाश रहित, परिपूर्ण, सर्वधर्म से रहित, ब्रह्म—स्वरूप है"। जैसे वन के शेर ने दहाड लगाई थी, तैसे ही महात्मा पुरुष 'अहं

ब्रह्मास्मि" ऐसो वहाउ सुनाते हैं; तब बकरियों के शेर की नाईं जो जिज्ञासु है; उसको पूर्व अनेक बार वेदान्त-शास्त्र का श्रवण होने से, उसके संस्कार मन करण मे सूक्ष्मरूप से स्थित होने के कारण, गुरुजनों के मुखार विन्द से वचन सुनते ही उनके बल से 'मैं ब्रह्म हूँ" ऐसी स्मृति आजाती है, और वह अपने को ब्रह्मरूप जानता है। इस प्रकार बकरीपना जो 'जीव भाव' है, सो छूट जाता है। यही निर्बलता इन चेतन रूपी जीव मे हो रही है।

जैसे—विष्णु भगवान् ने समुद्र से 'अमृत रत्न' को निकाल के देवताओं को पिलाया, तब वे बल को प्राप्त होकर असुरों को मार सके। तैसेही—यहां विष्णुरूप 'गुरु' ने समुद्ररूपी 'वेद' से सुधा की नाईं जो 'ज्ञान रत्न' है, उसको नाना प्रकार की 'युक्ति-रूपी रस्सी' से मथन करके 'अधिकारी' पुरुषों को पिलाया है। तब उन्होंने 'ब्रह्म-भाव' रूपी बल को प्राप्त करके परि-छिन्न 'अहंकार' रूपी असुरों को मारा है। और जैसे विष्णु ने देवता और असुरों का आपस में विचार हुआ,

तब युक्ति से मोहनीरूप धारण किया, तब उस रूप को देख के असुर मोहित होगये। उस समय देवताओ को सुधा और असुरो को सुरा पिला के उनका विवाद मिटा दिया। तैसे ही–देवरूपी 'जीव' और अनात्म 'अहकार' रूपी असुरो का जो आपस मे विवाद है, उसको मेटने के लिये विष्णुरूपी 'गुरु' अनेक प्रकार की गुप्त, प्रगट 'युक्ति' करके परिछिन्न अहकार रूपी असुर को ज्ञान–रूपी 'अग्नि' प्रज्वलित करके जला देते हैं–यह कवित्त का अर्थ है। अब ज्ञान का कुछ कथन किया जावेगा।

"सो ज्ञान क्या है" ? ऐसा कोई पूछे तो सुन–"जिससे पदार्थ की ज्ञात होवे, उसको ज्ञान कहते हैं।" पदार्थो की ज्ञात तीन प्रकार से होती है। कहीं तो 'अनुमान' से ज्ञात होती है, जैसे–'पर्वतो वन्हिवान्" कहीं–'स्मृति' रूप करके ज्ञात होती है, जैसे–'वह महात्मा', और कहीं 'इदम्' रूप करके ज्ञात होती है, जैसे-"यह महात्मा"इसी प्रकार ज्ञान भी तीन प्रकार के होते हैं।

अब ज्ञानो को दिखाते हैं–जहा पर्वत आदि में

है, और गंध का ज्ञान नासिका से प्रत्यक्ष होता है, और ठंडे गर्म का ज्ञान त्वचा से प्रत्यक्ष होता है, तैसे ही रस का ज्ञान रसना से प्रत्यक्ष होता है। इस रीति से प्रत्यक्ष-ज्ञान षट् प्रकार का होता है। परन्तु—यह प्रत्यक्ष ज्ञान भी दो प्रकार का होता है,—एक तो 'प्रमा' और दूसरा 'अप्रमा' कहाता है। जैसे—रज्जु में अन्धकार आदिक दोष करके सर्प आदि का जो ज्ञान है, सो 'भ्रमज्ञान' कहा जाता है, और रज्जु का जो रज्जु रूप से ज्ञान है, सो 'प्रमा-ज्ञान' होता है, इसी को 'यथार्थ-ज्ञान' भी कहते हैं।

यह तो ज्ञान का साधारण लक्षण है। और जो केवल एक आत्मा का ही ज्ञान है; सो वह ज्ञान का असाधारण लक्षण है। जैसे—नेत्र से एक रूप का ही ज्ञान होता है, सो उसका साधारण लक्षण है, और यदि ऐसा पूछे कि—'आत्मा का ज्ञान कौन प्रमाण से प्रत्यक्ष होता है?' तो सुन—यह कहना ऐसा है, जैसे कोई कहे कि—'सूर्य का प्रकाश किस रोशन पदार्थ से होता है'? इस वचन को सुनके दूसरा पुरुष

कहता है, 'अरे मूर्ख ! जितने लौकिक पदार्थ हैं सो तो सारे ही सूर्य के प्रकाश से प्रकाशवान् होते हैं, सूर्य को कौन प्रकाश कर सकता है' ? तैसे ही जितने 'प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय' 'ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय' 'दृष्टा, दर्शन, दृश्य' कर्ता, क्रिया, कर्म ये सब त्रिपुटी हैं, जो ज्ञानस्वरूप आत्मा के प्रकाश को पाकर ज्ञानवाली होती हैं, आत्मा का ज्ञान इनसे नहीं होता है। क्योंकि ये तो सभी अनात्म और जड हैं।

इस प्रकार पदार्थ से किसी का प्रकाश होता नहीं, परन्तु-जैसे अग्नि से तपा हुआ लोहा दूसरे पदार्थों को प्रकाश कर सकता है, और जला भी देता है, परन्तु उस अग्नि के प्रकाश करने मे और जलाने मे उस लोहे की सामर्थ्य नहीं होती है। तैसेही यह जो प्रमाता, प्रमाण आदि त्रिपुटी हैं, सो आत्मा के तादात्मसम्बन्ध से ज्ञानवाली होती हैं, तब इनसे किसी पदार्थ का ज्ञान होता है, परन्तु-आत्मा का ज्ञान उनसे कैसे होवे ? आत्मा तो स्वयं प्रकाश है, और सर्व त्रिपुटी को प्रकाश करता है। इस प्रकार का चेतन आत्मा तू ही "व्यापक

है, और गंध का ज्ञान नासिका से प्रत्यक्ष होता है, और ठंडे गर्म का ज्ञान त्वचा से प्रत्यक्ष होता है, तैसे ही रस का ज्ञान रसना से प्रत्यक्ष होता है। इस रीति से प्रत्यक्ष-ज्ञान षट् प्रकार का होता है। परन्तु – यह प्रत्यक्ष ज्ञान भी दो प्रकार का होता है, — एक तं 'प्रमा' और दूसरा 'अप्रमा' कहाता है। जैसे — रज्जु मे अन्धकार आदिक दोष करके सर्प आदि का जो ज्ञान है, सो 'भ्रमज्ञान' कहा जाता है, और रज्जु का जो रज्जु रूप से ज्ञान है, सो 'प्रमा-ज्ञान' होता है, इसी को 'यथार्थ-ज्ञान' भी कहते हैं।

यह तो ज्ञान का साधारण लक्षण है। और जो केवल एक आत्मा का ही ज्ञान है, सो वह ज्ञान का असाधारण लक्षण है। जैसे — नेत्र से एक रूप का ही ज्ञान होता है, सो उसका साधारण लक्षण है, और यदि ऐसा पूछे कि — 'आत्मा का ज्ञान कौन प्रमाण से प्रत्यक्ष होता है?' तो सुन – यह कहना ऐसा है, जैसे कोई कहे कि — 'सूर्य का प्रकाश किस लौकिक पदार्थ से होता है'? इस वचन को सुनके दूसरा पुरुष

कहता है, 'अरे मूर्ख ! जितने लौकिक पदार्थ हैं सो तो सारे ही सूर्य के प्रकाश से प्रकाशवान् होते हैं, सूर्य को कौन प्रकाश कर सकता है' ? तैसे ही जितने 'प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय' 'ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय' 'दृष्टा, दर्शन, दृश्य' कर्ता, क्रिया, कर्म ये सब त्रिपुटी हैं, जो ज्ञानस्वरूप आत्मा के प्रकाश को पाकर ज्ञानवाली होती हैं, आत्मा का ज्ञान इनसे नहीं होता है। क्योंकि ये तो सभी अनात्म और जड हैं।

इस प्रकार पदार्थ से किसी का प्रकाश होता नहीं, परन्तु-जैसे अग्नि से तपा हुआ लोहा दूसरे पदार्थों को प्रकाश कर सकता है, और जला भी देता है, परन्तु उस अग्नि के प्रकाश करने मे और जलाने मे उस लोहे की सामर्थ्य नहीं होती है। तैसेही यह जो प्रमाता, प्रमाण आदि त्रिपुटी हैं, सो आत्मा के तादात्मसम्बन्ध से ज्ञानवाली होती हैं, तब इनसे किसी पदार्थ का ज्ञान होता है, परन्तु-आत्मा का ज्ञान उनसे कैसे होवे ? आत्मा तो स्वय प्रकाश है, और सर्व त्रिपुटी को प्रकाश करता है। इस प्रकार का चेतन आत्मा तू ही "व्यापक

"दुराग्रह" -- विपर्यय है। इस जीव के अनेक जन्मो मे जीवत्व धर्मों का दृढ निश्चय होने से श्रवण काल में जीव भावना बनी रहती है, और ब्रह्म भावना नहीं होती (इस को दुराग्रह जानना) जब तक यह विपर्यय होता है, तब तक 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा ज्ञान नहीं होता हैं, इसी से इसको प्रतिबन्ध कहते हैं।

'भूत-प्रतिबन्ध' की और 'वर्तमान -- प्रतिबन्ध' की तो उपाय करने से निवृत्ति हो जाती है, परन्तु तीसरा जो 'भावी-प्रतिबन्ध' है, उसकी निवृत्ति विलक्षण कर्म के भोगने से ही होती हैं, इससे उसमें पुरुषार्थ नहीं चलता है, परन्तु– प्रथम दोनो की तो पुरुषार्थ करने से निवृत्ति हो जाती है। इस-लिए जिज्ञासु पुरुषो को उनकी निवृत्ति अवश्य करना चाहिये, क्योंकि -- ज्ञान के प्रतिबन्ध से रहित होते ही मोक्षरूपी फल की प्राप्ति होती है।

"वासना" भी ज्ञान की प्रतिबन्धक होती है, और सो वासना दो प्रकार की होती है, एक तो 'शुद्ध

वासना' होती है, जोकि–जिज्ञासु को होती है, यह जन्मो का नाश करनेवाली है, और दूसरी 'मलिन–वासना' होती है सो तीन प्रकार की होती है। एक तो लोक में पूजेजाने की जो इच्छा है उसे 'लोक-वासना' कहते हैं। दूसरी 'देह--वासना' है, वह अनेक प्रकार की होती है, 'मेरी देह बहुत अच्छी है, मेरी जाति सबसे उत्कृष्ट है, मेरा अङ्ग गोरा है, सर्व शरीरो से मेरा शरीर अच्छा है'—आदि इस प्रकार की सभी वासना मलिन कही जाती हैं, और जन्मो के देनेवाली होती हैं। तथा तीसरी 'शास्त्र–वासना' होती है, सो भी कोई तो 'पाठ--वासना' होती है, कोई 'अर्थ-वासना' आदि इस प्रकार 'शास्त्र–वासना' के भी बहुत भेद हैं, परन्तु–ये सभी मलिन वासनाएँ हैं, और जन्मो के देनेवाली हैं। इसलिये यह वासना भी ज्ञान का प्रतिबन्ध होने के कारण त्याग करने के योग्य है।

छठा प्रतिबन्ध–'अभिनिवेश' है, उसी को सांख्य-मत में 'महत्तत्त्व' कहते हैं, और वेदान्त वाले उसे

और (१०) सासारिक पदार्थों के वियोग में जिसे शोक नहीं है, — ये दस लक्षण उसी मे होते हैं, जिसको ज्ञान की प्राप्ति हुई है।

ख— ज्ञानी पुरुषो के षट् लक्षण और भी होते हैं,— (१) निर्हठ, अर्थात् – किसी प्रकार का किसी से हठ नहीं करते हैं, (२) निर्विवाद, अर्थात् विवाद भी किसी से नहीं करते हैं (३) नि.शङ्क, अर्थात् — आत्म वस्तु में कोई भी शङ्का उनको नहीं है, और (४) किसी वेद शास्त्र की आज्ञा-रूपी अकुश उनके शिर पर नहीं होता है, इसी से वे निरंकुश हैं (५) आत्मा मे ही तृप्त रहते हैं, और (६) कृतकृत्य हैं । इसी पर भगवान्.ने कहा है.—

श्लोक

यस्यात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्च
आत्यमन्येव च संतुष्टस्तस्य का[illegible]

विज्ञानवान् किसी पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त नहीं होता है और लौकिक तथा वैदिक सर्व कार्यों से रहित होता है। ये षट् लक्षण और उक्त दस ऐसे सोलह लक्षण ज्ञानवानों के कहे हैं। इनके अतिरिक्त और भी 'अमानित्व' आदिक वहुत लक्षण हैं। तात्पर्य यह है कि – जितने लक्षण जिज्ञासु में होते हैं, वे प्रयत्न साध्य होते हैं, और ज्ञानवान में वे स्वाभाविक ही होते हैं।

इस बात को सुन के शिष्य कहता है— "हे भगवन् ! यह जो आपने ज्ञान का कथन किया है, तिसमें ज्ञान का कारण कौन है ? और उसका स्वरूप तथा-फल क्या है ? और उसकी अवधि किस [illegible] है ? सो ये सब आप कृपा करके वताइये।"

[illegible] हैं–'हे शिष्य ! अब तू ज्ञान के कारण [illegible] कर, प्रथम तो 'विवेक' आदि चार हैं [illegible] चारों कारण श्रवण [illegible] तो श्रवण

ग्रौर (१०) सासारिक पदार्थों के वियोग में जिसे शोक नहीं है, — ये दस लक्षरा उसी में होते हं, जिसको ज्ञान की प्राप्ति हुई है।

ख— ज्ञानी पुरुषो के पट् लक्षरा ग्रौर भी होते है,— (१) निर्हठ, ग्रर्थात् — किसी प्रकार का किसी से हठ नहीं करते है, (२) निर्विवाद, ग्रर्थात् विवाद भी किसी से नहीं करते है (३) नि.शङ्क, ग्रर्थात् — ग्रात्म वस्तु में कोई भी शङ्का उनको नही है, ग्रौर (४) किसी वेद शास्त्र की ग्राज्ञा-रूपी ग्रकुश उनके शिर पर नहीं होता है, इसी से वे निरकुश हैं (५) ग्रात्मा मे ही तृप्त रहते हैं, ग्रौर (६) कृतकृत्य हैं। इसी पर भगवान् ने कहा है.—

श्लोक

यस्यात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्च मानवः
ग्रात्यमन्येव च संतुप्टरतस्य कार्यं न विद्यते

विज्ञानवान् किसी पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त नहीं होता है और लौकिक तथा वैदिक सर्व कार्यों से रहित होता है। ये षट् लक्षण और उक्त दस ऐसे सोलह लक्षण ज्ञानवानो के कहे हैं। इनके अतिरिक्त और भी 'अमानित्व' आदिक वहुत लक्षण हैं। तात्पर्य यह है कि – जितने लक्षण जिज्ञासु मे होते हैं, वे प्रयत्न साध्य होते हैं, और ज्ञानवान में वे स्वाभाविक ही होते हैं।

इस बात को सुन के शिष्य कहता है— "हे भगवन्! यह जो आपने ज्ञान का कथन किया है, तिसमे ज्ञान का कारण कौन है? और उसका स्वरूप तथा-फल क्या है? और उसकी अवधि किस प्रकार है? सो ये सब आप कृपा करके बताइये।"

गुरु कहते हैं–'हे शिष्य! अब तू ज्ञान के कारण आदि का श्रवण कर, प्रथम तो 'विवेक' आदि चार ज्ञान के कारण हैं, परन्तु—ये चारो कारण श्रवण मे प्रवृत्ति द्वारा हैं, क्योंकि--बहिर्मुख का तो श्रवण

अर्थ यह है कि—जगत् मे जीवन मुक्त वही है, जिसने आत्मा को 'परिपूर्ण–ब्रह्म' रूप करके जाना है। पिंड प्राण के सयोग होने से पच प्रकार की जो भ्राति है, सो दिखाते हैं—भेद–भ्राति, कर्ता भोक्तापने की भ्राति, सग की–भ्राति, विकार भ्राति, और ब्रह्म से भिन्न जगत् के सत्यपने की भ्राति, इन पच प्रकार की भ्राति की निवृत्ति जिन पच दृष्टातो से की जाती है, वे दृष्टात यह हैं—

बिंब प्रतिबिंब के दृष्टात से भेद भ्राति की निवृत्ति होती है, स्फटिक मे लाल वस्त्र के लाल रंग की प्रतीति के दृष्टान्त से कर्ता, भोक्तापने की भ्राति की निवृत्ति होती है, घटाकाश के दृष्टात से सग--भ्राति की निवृत्ति होती है, रज्जु में कल्पित सर्प के दृष्टात से विकार–भ्राति की निवृत्ति होती है और कनक में कु डल के दृष्टात से ब्रह्म से भिन्न जगत् के सत्यपने की भ्राति की निवृत्ति होती है इस प्रकार की भ्राति से जो नाना प्रकार का भेद भासता है उस भेद का और भ्राति का मूल, कहिये

जो-'अज्ञान' उखारया, अर्थात्--ज्ञान रूपी असङ्ग शस्त्र से जिसने काट दिया है, और जिसका प्रारब्ध के अनुसार व्यवहार होता है, और जिसने सचित और आगामी को "ज्ञानाग्निदग्धकर्माण तमाहु पण्डितम्बुधा" उस ज्ञान रूपी अग्नि से जला दिया है और सूखे तृण की नाई प्रारब्ध के बल से जिसका शरीर ससार मे फिरता है। इष्ट कहिये अनुकूल और अनिष्ट कहिये प्रतिकूल अदृष्ट से ऐसे दोनो के बल से वह विचरता है, इस प्रकार अहकारता के भाव से रहित 'जीवन-मुक्त' पुरुषो का व्यवहार होता है।

ये सारा व्यवहार ऐसा है कि—जैसी भाँडो की सख्या होती है, और जैसे कुम्हार दडा लगा के चक्र को फिरा देता है, तैसे ही प्रारब्ध रूपी डडे से शरीर रूपी चक्कर फिरता है, जितना वेग चक्कर में पडता है, उतने समय तक फिरता है और वेग घटने से ठहर जाता है। तैसे ही प्रारब्ध रूपी वेग

'अति-आश्रमी' और 'अति-ब्राह्मण' भी कहते हैं। ऐसे जीवन मुक्त विद्वान् किसी पुण्य पाप कर्म से लिपायमान नहीं होते हैं, चाहे वे किसी विधि कर्म को करें चाहे न करें।

यह सुन शिष्य शँका करता है--"हे भगवन्! जिन सध्या गायत्री आदि कर्मों को पाप निवृत्ति के वास्ते वेद ने कथन किया है, उन कर्मों को "जीवन--मुक्त" नहीं करेगा--तो उसको भी पाप होगा?" इस पर से गुरु कहते हैं —

'हे शिष्य! वेद ने पाप निवृति के वास्ते सध्या गायत्री कर्म का जो कथन किया है, सो सब दिन तथा--पुरुषों के वास्ते करने को नहीं कहा है। किन्तु—किसी काल में उनके करने का निषेध भी किया है, जैसे-सूतक पातक में उनका निषेध भी किया है। ऐसे ही ज्ञानवान् के लिये भी सर्व कर्मों का निषेध ही कथन किया है, क्योंकि--उनके घर में सूतक और पातक दोनों होते हैं।

कुण्डलिया

ममता माई मरि गई, पुत्र उपजा बोध।
सूतक पातक दो हुये, घर में रही न सोध।
घर में रही न सोध कैसे अब करिये संध्या।
शास्त्र वर्जित कर्म करे सोई जानो अंधा।
गुप्त माहिं किरिया लखे सो नर मूरख जान।
सन्ध्या गायत्री विना सदा एक निरवान।१।

जिसके घर मे एक सूतक के होते सन्ध्या गायत्री का निषेध कहा है, फिर जिसके यहा 'सूतक, पातक' दोनो इकट्ठे हो, उसको क्या करना चाहिए? वह तो निषेध रूप ही है, क्योकि — जीवन मुक्त ज्ञानवान् पुरुष विधि के भी किंकर नही होते हैं। वे तो विधि और निषेध दोनो के शिर पर पैर धर के बर्तते हैं। केवल प्रारब्ध के ही आधीन

उनका व्यवहार होता है। उनकी क्रिया का नियम नहीं होता है, इसी से उनको जीवनमुक्त कहते हैं। शिष्य शंका करता है—

"हे भगवन्! यह जो जीवनमुक्त के सम्बन्ध मे आपने कहा है —सो तो जब सिद्ध हो, तो ऐसा होता है, परन्तु —पहले "जीवत्व बन्ध" क्या है? सो आप कृपा करके बताइये"।

गुरु कहते हैं— "हे शिष्य! तीन शरीर और पच कोषो मे जो कर्त्ता भोक्तापने का "परिच्छिन्न अहंकार" हो रहा है, यही "जीवत्वबन्ध" है। जैसे चोर आदि के वास्ते कारागृह बन्धन होता है और उनके हाथों मे हथकडी, पैरो में बेडी, गले में तौक-जंजीर, और हाथ रस्सी से बाधकर, उसे कारागृह मे रोक देते हैं, और पहरेदार सिपाही उसकी रखवाली करते है, यदि वह कभी बाहर निकलना चाहे, तो उसके शिर में डडा मारते हैं। तैसे ही — अज्ञानी पुरुषों के लज्जारूपी तौक गले में पड़ा है,

और ममतारूपी बेडी पैरो मे पडी है, और पदार्थों में जो प्रीति है, सो ही रस्सी है, इससे हाथ बांध के रखे है, और अज्ञान रूपी कारागृह में बाधकर रखा है और मोह रूपी सिपाही पहरेदार रहता है, यदि – वह कभी अज्ञान रूपी कारागृह से निकलना चाहे, तो मोह रूपी सिपाही 'अह, मम' रूप डडे मारता है, तब वह बध मे पडा पडा रोता है, और नाना प्रकार के जन्म-मरण रूपी दुखो को भोगता है। यही इस जीव को "जीवत्वबन्ध" है। और यह अपने आपही बन्धा है किसी दूसरे मे नहीं बाधा है, जैसे — मर्कट मुट्ठी बाध के छोडता नहीं है, और जैसे कोई पुरुष किसी स्थभ को बाथ भर ले और समझे कि — 'मुझे वृक्ष ने पकडा है' वास्तव मे उस पुरुष ने ही वृक्ष को पकडा है और वह उसको छोडदे, तो छूट जाता है।

दोहा—

तुझे नहिं पकड्या जगत् ने,
तैनेहि पकड्या आनि ।

तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥१॥
निराशिपमनारभं, निर्नमरकारमस्तुतिम्
क्षीणाञ्च क्षीणकर्माणं, तं देवा ब्राह्मणं
विदुः ॥२॥ नजाति कारणं तात ! गुणाः
कल्याणकारणम् । स्थित वृत्तिश्चाण्-
डालोऽपि, तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥३॥

॥ इति श्री जीवन-मुक्त-रत्न समाप्तम् ॥

***

अथ विदेह-मुक्त-रत्न ।

— ● —

कवित्त — विदेह मोक्ष के मंझार पडो
झगडा अपार, कहें वात जो हजार
कहो कौन से , की मानिये ॥

कोई तो कहत यह ईश्वर से अभेद होय, कोई तो कहत शुद्ध ब्रह्महू से जानिये ॥ और कोई कहे किसी लोक माही मोक्ष होत, कोई तो कहत तासे उलटाहू आनिये ॥ भेद औ अभेद नाहीं, विधि औ निषेध नाहीं, आन जान खेद नाहीं, गुप्त-रूप जानि के भर्म सब भानिये ॥१॥

यह है कि—यह जो विदेह मोक्ष है इसमें
का शास्त्रकारों का कथन है, इसमे किस
और किसकी नहीं मानें ? क्योंकि—
से अभेद' कहते हैं,
ते हैं, कोई 'किसी
'पुनरावृत्ति'

तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥१॥
निराशिषमनारभं, निर्नमरकारमस्तुतिम्।
क्षीणञ्च क्षीणकर्माणं, तं देवा ब्राह्मणं
विदुः ॥२॥ नजाति कारणं तात ! गुणाः
कल्याणकारणम् । स्थित वृत्तिश्चाण्-
डालोऽपि, तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥३॥

॥ इति श्री जीवन-मुक्त-रत्न समाप्तम् ॥

***

अथ विदेह-मुक्त-रत्न ।

— ● —

कवित्त — विदेह मोक्ष के मंस्कार पड़ा
झगडा अपार, कहें बात जो हजार
कहो कौन से की मानिये ॥

कोई तो कहत यह ईश्वर से अभेद होय, कोई तो कहत शुद्ध ब्रह्महू से जानिये ॥ और कोई कहे किसी लोक माही मोक्ष होत, कोई तो कहत तासे उलटाहू आनिये ॥ भेद औ अभेद नाहीं, विधि औ निषेध नाहीं, आन जान खेद नाहीं, गुप्त-रूप जानि के भर्म सब भानिये ॥१॥

अर्थ यह है कि—यह जो विदेह मोक्ष है इसमे अनेक प्रकार का शास्त्रकारों का कथन है, इसमे किस को बात मानें, और किसकी नहीं मानें ? क्योकि—"कोई तो विदेह मोक्ष मे 'ईश्वर से अभेद' कहते हैं, और कोई 'शुद्ध—ब्रह्म से अभेद' कहते हैं, कोई 'किसी लोक मे जाने को' मोक्ष कहते हैं, कोई 'पुनरावृत्ति'

नहीं बनेगा । क्योंकि—प्रथम जिसका भेद होवे, उसी का अभेद होता है, और जिसका उपाधि से भेद प्रतीत हो, उसका भेद नहीं होता है--यह उसका स्वरूप ही है। इसलिये बिंब से भी अभेद कहना नही बनता है। तैसे ही बिंब जो शुद्ध–चेतन और प्रतिबिंब 'जीव' व 'ईश्वर' जल दर्पण की नाईं है।

ईश्वर मे माया और जीव मे अविद्या — रूपी उपाधि है। एक अविद्या — उपाधि के निवृत्त होने से माया — उपाधि वाला जो ईश्वर – प्रतिबिंब है, उसके साथ जीव – प्रतिबिंब की 'एकता' कहना नहीं बनता है, और बिंबरूप जो शुद्ध-चेतन है, उसमें अभेद कहना तभी बनेगा, जब उसमे भेद हो ? अत उससे किसी वस्तु का भेद कहना बनता नही, क्योंकि— "चेतन में वास्तव मे तो कुछ है ही नहीं, और है सो कल्पित है।" ऐसा कहें — तो उससे कुछ भेद सिद्ध होता नहीं है। क्योंकि — जैसे कल्पित रजत से शुक्ति में भेद होता नहीं है, तैसे-- ही मुझ शुद्ध आत्मा में माया, अविद्या, उपाधि, जिसमें प्रतिबिंब, ईश्वर, तथा

जीव और इनके सर्वज्ञता, अल्पज्ञता, आदि जो धर्म है, सो सब मेरे में कल्पित होने से भेद और अभेद कहना नहीं बनता है। इसलिए सर्व, द्वैत कल्पना से रहित एक मैं ही परिपूर्ण हू।

श्लोक—

किं करोमि क्व गच्छामि,
किं गृह्णामि त्यजामि किम्।
आत्मना पूरितं सर्वं,
महाकल्पाम्बुना यथा ॥१॥

जब इस प्रकार जान के शरीर का बोध होगा, तब पुनरावृत्ति से रहित हो सकेगा। इसी को विदेह मोक्ष कहते है। शिष्य कहता है,— "हे भगवन्! यह जो आपने विदेह मोक्ष कहा, इसमें — उत्तम- देश, उत्तरायण— काल और किसी सिद्ध --- आसन आदिक की अपेक्षा तो होगी ?" ऐसी शका के होने पर—

अर्थ यह है कि—जो वर्णाश्रम का अभिमानी होता है, सो ही वेद का किंकर होता है, और जो जीवन्मुक्त विद्वान है, सो किसी वर्णाश्रम का अभिमानी नहीं होता है, इसी से उसपर वेद का भी डंडा नहीं है, इसलिये वह सब वेद शास्त्र को उत्क्रमण करके वर्तता है। यही कारण है कि—उसके विदेह मोक्ष मे कोई भी विधि नहीं है, क्योंकि—मुक्त तो ज्ञान काल से ही है, परन्तु—शरीर का बोध होने से 'विदेह-मोक्ष' कहा जाता है।

और यह जो साधन साध्य रूप जितना कथन किया है, सो सारा तेरी उक्त शंका की निवृत्ति के वास्ते है, क्योंकि—पूर्व ग्रन्थ के आरम्भ में तेरे को सुख-प्राप्ति की वाछा हुई थी, सो आत्मा को सुख-रूप न जानने के कारण हुई थी। वह 'सुख—रूप तूही है, तेरे से भिन्न और कोई दूसरा है ही नहीं, और तूही सुख-स्वरूप है" इसी के ज्ञात कराने के लिये सत्संग से लेकर विदेहमोक्ष पर्यंत जो कुछ

कथन किया गया है, सो सब तेरी ही दृष्टि को लेकर कहा गया है, हमारी दृष्टि मे तो ऐसा है—

श्लोक

नचोत्पत्तिर्नो निरोध न च
वंधोऽस्ति साधके॥
न मुमुक्षुर्न मुक्तश्च
इत्येषा परमार्थता ॥ १ ॥

अर्थ यह है कि—"हे शिष्य ! कोई उत्पन्न ही नही हुवा, तो नाश किसका होवे ? और प्रथम कोई बन्ध ही नहीं तो उस के वास्ते साधन कैसे होवे ! और कोई मुमुक्षु ही नहीं, तो मुक्त कहा से होवे ? ये तो परमार्थ से है ही नही" हम तो ऐसा ही जानते हैं। तू भी ऐसा हो जान। " सुख की प्राप्ति की और प्राप्त

कुण्डलिया

निज स्वरूप अज्ञानते, दीखत है बहु भेद। स्वरूप ज्ञान के होतही, मिटि जावे सब खेद ॥ मिटि जावे सब खेद, वेद यो नितही गावे। मृगतृष्णा जग नीर, सुनाकर भेद मिटावे। लख निज गुप्त स्वरूप, कूप जग गिरो न प्यारे। अवसर चूके मूढ, फिरं विषयन के मारे ॥

कुण्डलिया

भेद जो पच प्रकार का, ताको कहूँ बखान। जीव ईश का भेद यक, ईश जगत को जान ॥ ईश जगत को जान, तीसरा जीव जीवन का। चतुरथ भेद पिछान, जीव अरु जड है जिनका ॥ पचम भेद जड जडन को, यही भेद आकार। ध्रुव सब छूटे भेद जब, तब होय भेद से पार।

कुण्डलिया

बिना भेद जाने बिना, छुटै न भेद को पन्थ ॥
श्रुति सिद्धात यह कहत है, और कहे मुनि सन्त ॥
और कहे मुनि सन्त, भेद को अन्त जो कीजै ॥
भेद पाप को मूल, ताको ना उर मे दीजै ॥
गुप्त रूप जबहीं लखे, छुटे भेद की बात ।
भेद जो पांच प्रकार का, ता पर मारे लात ॥

कुण्डलिया

अनादि वस्तु को कहते है तिनको सुन अब भेद ।
ब्रह्म ईश जीव अरु माया, सम्बन्ध भेद कहे वेद ।
सम्बन्ध भेद कहें वेद, तिन मे कछु भेद बताया ।
ब्रह्म है अनन्त अनादि, पाच ये शान्तहि गाया ॥
कहे गोवर्धन विचार, अनादि वस्तु गाई ।
गुप्त बात भई प्रगट, कुण्डलिया देखो भाई ॥

उठि जात प्रभात, जात कुछ देर न लावे ॥ चहे लाखो करो उपाय, फेर ढूंढे नहि पावे ॥ जब भूल्यो गुप्त स्वरूप, पड़ो ममता की फासी ॥ क्या रोवे मत्या कूट, तुही चेतन अविनाशी ॥

कुण्डलिया

अपने-अपने कर्म का भोगन आये भोग ॥ पूर्व के किसी कर्म से, आन मिला सयोग ॥ आन मिला सयोग, सोच फिर किसका कीजे ॥ स्वप्नो सो जग, जान नाम यस हरि का लीजे ॥ जब पाये गुप्त स्वरूप, अविद्या सबही छीजे ॥ सब मिथ्या ससार, शोक फिर किसका कीजे ॥

कुण्डलिया

लगे रहो हरि नाम से छोडो जग की आस ॥ खबर नहीं है घडी की, निकल जायगे स्वास ॥ निकस

जाएगे स्वास, काल ने सब कोई खाया ॥ राजा रक फकीर, काल के हाथ बिकाया ॥ परारब्ध के भोग में, होना नही उदास ॥ गुप्तरूप घट माहिं लख, सब तजो जगत की आस ॥

कुण्डलिया

ना कछु हुया न है कछु, ना कछु आगे होय ॥
मृगतृष्णा के नीर मे, क्यो बहाजात बिन तोय ॥
क्यो बहाजात बिन तोय, मोह का छोड अखाडा ॥
सुषुप्ति अवस्था माहिं, जगत का पोल निकाला ॥
गुप्त गली मे बैठि के, कीजे सदा विचार ॥
तूं चेतन भरपूर है, झूठा जगत असार ॥

कुण्डलिया

भोगन मे सुख है नहीं, सब तजो जगत के भोग ॥
भोग शोक का रूप है, यो कहे सयाने लोग ॥

कवित्त

कछू कीजिये विचार नरतन को यह सार, आप रूप व
सभारकर अमिय रस पीजिये ।। तत्वमशि को विचा
देख सार वा असार, सार को विचार वा असार दू
कीजिये । पावे वस्तु अनूप ताकी दीजिये न ऊप कोई
आपनो स्वरूप सोई और ना पतीजिये ।। द्वैत मन ध
सो तो गर्भ माहि जरे, द्वैत दूर करे सो तो परमप
पाइये ।।

कवित्त

जामे हाड और चाम ऐसो वस्यो है यह गांम,
करना जो काम सो तो याही माहिं कीजिये ।। सुत दारा
परिवार सव जानिये असार, तोसो कहो वार वार
छिन एक ही में छीजिये ।। कीजे काम कोउ ऐसा
जामे लागत न पैसा, छोड दीजे ऐसा वैसा एक ईश
चित्त दीजिये ।। कहे गुप्त जो पुकार ऐसा निश्चय
धुरू धार, एक वा हजार वार यही सुन लीजिये ।।

कवित्त

ज्ञान सागर में न्हावो माया मलको वहावो, ऐसा दाव नहीं पावो यह बात सुन लीजिये ।। ऐसे जल माही न्हावे जब शान्ति चित्त आवे, तब और ना सुहावे कछु आपने में रीझिये ।। जान्या आपने को आप जब मिटे तीनो ताप, जपै कौनहू का जाप कहो काज कौन कीजिये ।। करना भयो सब दूर गुप्त रूप है भरपूर, सोई आपना है नूर समझ यह लीजिये ।।

कवित्त

देखिये सुजन जन देखने के योग्य आप, आपको निहार जाप देवका मिटाइये ।। जाग्रत सुपन सुषोपति लीन मन, तिनको जो साक्षी सो ता तुरिया कहाइये ।। ऐसा तुरिया स्वरूप तुहीं तुझ बिन और नहीं, वेद महावाक्य सही सत अनुभव से गाइये ।। गुप्त रूप को पिछान कीजे माया मल हान, ध्रुव लक्ष जानि कहा जाइये न आइये ।।

वटाऊ वीरा काम घणोंऽ दिन थोडो रे,

काम घणो रे भाई, काम घणो दिन थोडो रे

वटाऊ वीरा काम घणोऽ दिन थोडो रे । देर

थारी म्हारी बाता कर के व्यर्थ समय मत खोवो

निवकमी याता दूर हटा कर धर्म तरफ मन मोडो रे ॥व०

मात पिता धन वेटा पोता नहीं सदा के साथी

ज्ञान ध्यान के साधन में, यह बीच में पटके रोडो रे ।

मोह माया को छोड छाड कर मन को भी वस करना

मनडो ऊभड भाग चलेगो जैसे अजड घोडो रे ॥

रुढी धर्म बहुत ही फैला वह सच्चा मत जाणू ।

पर उपकार धर्म है साचो इसको पूंजी जोडो ॥

सब धर्मों पर दया धर्म है इसको पालो भाई ।

दया धर्म पर तान धरी तो बहुत पडेलो फोडो रे ॥

खरे धर्म का सीधा रस्ता ज्ञानी है वह जाणें ।

जन सेवा को सदा पड्यो है खुल्लो रस्तो चोडो रे ॥

ईश्वर जाप जपण को बैठे मनडो चहुँ दिश भागे ।

जप मे ध्यान लगे नहीं तब तो ध्यान बिना जप खोडो रे

जाय जवानी आवे बुढापा तरतर श्रद्धा टूटे ।

वटाऊ वीरा काम घणोऽ दिन थोडो रे,

काम घणो रे भाई, काम घणो दिन थोडो रे

वटाऊ वीरा काम घणोऽ दिन थोडो रे । देर
थारी म्हारी बाता कर के व्यर्थ समय मत खोवो
निकम्मी बाता दूर हटा कर धर्म तरफ मन मोडो रे ॥व
मात पिता धन बेटा पोता नहीं सदा थे साथी
ज्ञान ध्यान के साधन में, यह बीच मे पटके रोडो रे।
मोह माया को छोड छाड कर मन को भी वस करना
मनडो ऊभ्फ्ठ भाग चलेगो जैसे शजट घोडो रे।
छो धर्म बहुत ही फैना वह सच्चा मत जाणू
पर उपकार धर्म है मायो इसको पूजी जोडो।
सब धर्मों पर दया धर्म है इसको पालो भाई।
धर्म पर मान धरो तो बहुत पटेलो फोडो रे।
तरे धर्म का नाथा रस्ता ज्ञानी है वह जाणें।
जन सेवा को सदा पकडो है पुरतो रस्तो चोडो रे ॥
ईश्वर जाप जपण को बैठे मनडो चहूँ दिश भागे।
जप में ध्यान लगे नहीं तब तो ध्यान बिना जप रोडो रे
जाय जवानी आवे बुढापा तरतर श्रद्धा टूटे।

जग सेवा मे लाग रहो भाई इसमे न हो मोडो रे ॥
चेत सके तो चेत मुसाफिर उमर बीती जाती ।
दया धर्म की बाध कटारी लख चौरासी तोडो रे ।
इस दुनिया मे सभी मुसाफिर नही किसी का घर है ।
कीरत लारे छोड चलो भाई जग मे जीवन थोडो रे ॥
अन्त समय में सब की ममता छोडन मे दुख भारी ।
झूठी मोहब्बत जाण सभी से पहले ही मुख मोडो रे ॥
समय बहुत ही कम है भैरव काम बहुत है भारी ।
पर उपकार करन के लिये सब से आगे दोडो रे ।

काल करे सो आज कर आज करे सो अब ।
पल मे प्रलय होयगी फेर करेगो कब ॥
रात गमाई सोय के दिवस गमायो खाय ।
भोले जन का सब समय कोड़ी साटे जाय ॥

राग केदारा-ताल दीपचंदी

जीव बटाऊ रे बहता मारग माई ।
आठ पहरका चालना, घडी इक ठहरै नाई ॥
गरभ जनम बालक भयो रे, तरुनाई गरबान ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

'ओम्' इस एक अक्षररूप ब्रह्म के नामका उच्चारण करता हुआ और ओङ्कार के अर्थस्वरूप मुझ को स्मरण करता हुआ, जो मनुष्य शरीर को छोडता (मरता) है, वह परम गति को प्राप्त हो जाता है।१। हे हृषीकेश ! आपके गुणों के कीर्तन से जो जगत् प्रसन्न और प्रेमान्वित हो रहा है, यह उचित ही है, ये राक्षस लोग भयभीत होकर सब दिशाओं में भाग रहे हैं और सब सिद्धगण आपको नमस्कार कर रहे हैं यह भी युक्त ही है ॥ २ ॥ 'वह' सब ओर रहने वाले हाथो और चरणो से युक्त है तथा सब ओर रहनेवाले आखो, शिरो और मुखों से युक्त है एव सब ओर व्यापकरूपसे रहनेवाली श्रवणेन्द्रियों से भी युक्त [illegible] ओर समस्त जगत को व्याप्त कर स्थित है ॥ ३ ॥ [illegible] ज्ञ है और सबसे प्राचीन, जगत् का शासक [illegible] ता सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, सब का पाता

(सब प्राणियों को कर्मानुसार पृथक्-पृथक् फल देने वाला) है, जिसके रूपका चिन्तन अशक्य है, जो सूर्य के समान प्रकाशमय वर्णवाला है और जो अज्ञान से अतीत है, उसको जो स्मरण करता है (वह उस परमपुरुष को प्राप्त होता है) ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं
प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं
वेद स वेदवित् ॥ ५ ॥
सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्त-
कृद्वेदविदेव चाहम् ॥ ६ ॥
मन्मना भव मद्भक्तो
मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं
मत्परायणः ॥७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सप्तश्लोकी गीता सम्पूर्णा ।

जिसका ऊर्ध्व (ब्रह्म)[1] ही मूल है और नीचे शाखाएं (अहङ्कार, तन्मात्रा आदि रूपवाली)[2] हैं, ऐसे इस संसार-रूप अव्यय अश्वत्थवृक्ष को (अविनाशी)[3] कहते हैं, ऋक्, यजु और सामवेद जिसके पत्र हैं,[4] जो इस संसार-वृक्षको इस रूप से जानता है, वह वेदों के अर्थों का जाननेवाला है ॥ ५ ॥ मैं सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मा होकर उनके हृदयों में प्रविष्ट हूं, उनके स्मृति, ज्ञान और इन दोनों का लोप भी मुझ से ही हुआ करते हैं, सम्पूर्ण वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ और वेदान्त का कर्ता तथा वेदार्थ को जानने वाला भी मैं ही हूँ ॥ ६ ॥ तू मेरे में ही मन लगाने वाला, मेरा ही भक्त, मेरी ही पूजा

करने वाला हो और मुझ को ही नमस्कार कर। इस प्रकार चित्त को मुझ मे युक्त कर मत्परायण हुआ मुझे ही प्राप्त करेगा ॥ ७ ॥

दोहा

चाहे कोई गीता पढो, चाहे कोई पढो कुरान।
बिन समझया दोई एक सा, चाहे रोना चाहे गान ॥
पाठ-रूप जानो मती, यह गीता का ग्रन्थ।
विचार विचार विचार लो, है जो कहा तक अन्त ॥
पाठ पाठ मे फस रया, खाली गया निराठ।
पढ पुराण पहुँचे नही, सबी डुबायो ठाठ ॥
गीता को क्या दोप है, रीता आप हो जाय।
बिना अर्थ ही पाठ कर सब ही धोखा खाय ॥

वास्तव में गीतोक्त ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर और कुछ जानना शेप नहीं रह जाता। गीता मे, भक्ति कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनो सिद्धातों की

प्रधानता है अतः गीता के ज्ञान का अभ्यास कर लेना मुमुक्षु को काफी है।

हम सब का कर्त्तव्य है कि बैठते उठते चलते फिरते तथा लेटते हुए हर समय ॐकार का ध्यान करते रहना चाहिये। यह ब्रह्म चिन्तन ही मनुष्य मात्र का सच्चा धर्म है फिजूल बातों में कुछ भी सार नहीं है।

नित्याभ्यासादृते प्राप्तिर्न
भवेत्सच्चिदात्मनः ।
तस्माद्ब्रह्म निदिध्यासेज्जिज्ञासुः
श्रेयसे चिरम् ॥ १० ॥

निरन्तर अभ्यास किये बिना सच्चिद-स्वरूप आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः जिज्ञासु को चाहिये कि कल्याण-प्राप्ति के लिये चिरकालतक ब्रह्मचिन्तन करता रहे।

जैसे नदी के पानी को समुद्र में जाने से रोकने में

लिये सुदृढ बाव के सिवा अन्य कोई उपाय सफल नही हो सकना, उसी प्रकार चित्त की वृत्ति को भोग की ओर से दृढ आग्रहपूर्वक हटाने के सिवा लाख उपाय करने पर भी वह आत्मा की ओर नही लग सकता।

इसलिये चित्त को अपने लक्ष्य ब्रह्म मे दृढ़ता पूर्वक स्थिर कर के अखड वृत्ति से अहर्निश मन ही मन आनन्द पूर्वक ब्रह्मान्द रसका पान करना चाहिये और थोथी बातो मे क्या रक्खा है।

दोहा

साबुन ज्ञान लगाय कर माया मलको धोय।
शील शिला फटकारिले फेर न मैला होय॥

यहा तक वक्ता गुरु और श्रोता शिष्य के परस्पर आत्मा के विषय मे जो शका समाधान हुआ है यह सब जाना परन्तु शका करने वाला कौन है और समाधान करने वाला कौन है इस बात को समझना चाहिये।

वास्तव में आत्मा स्वयं ही आत्मा के विषय में शंका करता है। जो शका का करने वाला है वही आत्मा है। उसे जो नहीं जानते वह बिलकुल भोले हैं। किसी भी विषय में शका करना चेतन का ही धर्म है। जड देह या इन्द्रियां शका नहीं कर सकते अत जब हम आत्मा के अस्तित्व के विषय मे शका करते है तो इस शका का करने वाला कोई न कोई चेतन ही है। वही चेतन आत्मा है। अर्थात आत्मा की सिद्धिशका की क्रिया से ही हो जाती है, क्योंकि शका का कर्त्ता यह आत्मा ही है।

ज्योति

सच्चा भगवान नहीं रहता है वन में ॥टेर॥
वह रहता आसू के भरे नयनन में
क्यों ढूंढे काशी मथुरा वृन्दावन में
वह छिपा बैठा है तेरे तन में

झुक देख बुला वह आयेगा एक क्षण मे
सच्चा भगवान नहीं रहता है वन मे (१)
क्या रक्खा है माला अरु मृग आसन मे
तूं ढूंढ उसे दुखियारों के क्रन्दन मे
गंगाजल से यदि शुद्ध आत्मा होती
तो मछली पा जाती मुक्ति का मोती
मेंढक चिल्लाता है दिन रात भजन मे
सच्चा भगवान नहीं रहता है वन में (२)
वट वृक्ष बढाता है जटा स्वर्ग नहीं पाता
मलता है राख क्या गधा साधु कहलाता
आसोपा, कह रहा, यह ढोंग है सारा
बिगर सत्य विचार नहीं है किनारा
सूं स्वयं अहम् ब्रह्मास्मि है जीवन में
सच्चा भगवान नही रहता है वन मे
ईश्वर का जहा नाम नही तो क्या है सुन्दर गानो में
मैं क्या हूँ यह लेता नही तो क्या है पोथी पानो में
काम क्रोध को न जी त्योतो क्या है तिलक लगाने में

मन को वश में न राखो तो क्या है ध्यान लगाने में
परमार्थ में न लागो तो क्या है दौलत पाने में
आत्म विद्या न सीखो तो क्या है काशी जाने में
घर ही में एकान्त जगह तो क्या है वन के जाने में
घर ही में अच्छी सम्पत्त है तो क्या है राव रमाने में
माता आदि घर में तीर्थ क्या है पुष्कर जाने में
पाचन क्रिया बिगड़ी है तो क्या है भोजन पान में
जिव्हा जिसकी वश नहीं तो क्या है औषध खाने में
अव्वल में ही भूल करी तो क्या है फिर पिछताने में
विद्या पढकर पडे रहे तो क्या है डिगरी पाने में
यह सार बातें लिखी गई अब क्या है ढोल बजाने में

*

ईश्वर प्रार्थना–अहो, हे प्रभो !

आपही ब्रह्मा हैं, आपही विष्णु है, आपही ईश्वर हैं, आपही महेश, सुरेश, दिनेश और गणेश हैं; आपही गोविन्द, परुषोत्तम और नारायण हैं, आपही परमेश्वर, माधव और मधु सूदन हैं; आपही धरनीधर, गदाधर

परन्तु आपका आत्मा स्वरूप ब्रह्म नाम तो केवल एक ही है जो कि भिन्न-भिन्न नामो से पूजा जाता है ।

दृष्टांत

दोहा

नदिया छिल्लर कुंड बावडी
पोखर कुवा सागर जल है ।
रंग रूप कैसे ही हो पर,
आखर तो सब जल ही जल है ॥

झावर झील तलाव नवो नद सागर सारे ।
हैं सब एक ही रूप बखानत न्यारे न्यारे ॥

इसी तरह परमात्मा तो केवल एक ही है परन्तु अलग-अलग नामों से पुकारे जाते हैं । इसे कोई ब्रह्म कहते हैं, कोई विष्णु कहते हैं, कोई शिव कहते हैं, कोई ईश्वर कहते हैं, कोई अल्लाह आदि नामों से

ार्थना की जाती है, परन्तु वास्तव में परमात्मा,
ानी आत्मा (ब्रह्म) फकत एक ही है ।

हरि ॐ सत्य एव ब्रह्म तस्मै नमो नम

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

—निवेदक, आसोपा

ॐ शान्ति ! शान्ति. !! शान्ति. !!!

उक्त पद

श्रीमान् धर्म भूषण, दानवीर, ब्रह्म ज्ञानी, कर्म योगी
सेठ रामगोपाल जी मोहता

श्रीमान्

आदरणीय भैरवदत्त जी आसोपा

आपने कृपा करके अपनी रचना "ब्रह्मज्ञान दर्पण" की पाण्डु लिपि मुझे देखने को और उसपर अपने विचार प्रकट करने के लिए दी जिसके लि[illegible] अनेक धन्यवाद। पुस्तक बहुत ही अच्छी लिखी ग[illegible] है। इसके प्रकाशन से बहुत लोगों को लाभ पहुंचेगा

आपने अपने जीवन में जो परोपकार के का[illegible] किये हैं उन में यह पुस्तक प्रकाशित करके भी लोगों का बहुत उपकार आप करेंगे।

—रामगोपाल मोहता

मोहता भवन,
बीकानेर
ता० २-४-५६ ई०